एक छोटा सा
BREAK !!!
A Treasure of short stories
युगप्रधानाचार्यसम प.पू. पंन्यास प्रवर
श्री चंद्रशेखर विजयजी म.सा.

* समर्पण *

इन सब (कथाओं से) लाभ हो...
खूब फायदा हो....

* वह तत्त्वजिज्ञासुवर्ग को...जो एक छोटी सी कथा को लेकर भी अपने जीवन के, विश्व संचालन के, सनातन प्रचलन के अबाधित सत्यों, अविचलित तथ्यों, अविदित रहस्यों को पाने में समर्थ होते है।

* वह विनोदप्रियजन वर्ग को...जो कक्षा-वांचन के माध्यम से अपने **free** समय को सदुपयोग में लेना सोचते है; और भी ऐसे सात्त्विक वृति के रस पोषण के लिए **spare time** निकालकर भी मन की प्रसन्नता को बनाए रखना सही समझते है।

* वह शिशुवत्सलहितेच्छु वर्ग को...जो अपनी जिम्मेदारी समझकर नियमित दौर पर अपने बच्चों को, पोतों को वैविध्यपूर्ण कहानियाँ सुनाने की ठान लेना जरुरी समझते है और अतःएव रोज-बेरोज नये नये प्रसंगो को बच्चो के आगे रखकर संस्कार सिंचन को महत्वपूर्ण कार्य करना चाहते है।

* वह स्वव्यक्तित्व विकासलक्षी विद्यार्थीवर्ग...जो हमेशा अलग अलग तरह के साहित्य पढना पसंद करके, घटना-वर्णन को लेकर अच्छे-अच्छे गुण मूल्य को अपने जीवन में उतारने के लिए जागृत रहना आवश्यक मानते है।

दिखने में छोटी लगे, घाव करे गंभीर

उक्त को सार्थक करे ऐसी जीवन परिवर्तक
और आदर्श छोटी-छोटी कथाएँ का रसथाल
यानि

* लेखक *

युगप्रधानाचार्यसम प.पू.पंन्यास प्रवर
श्री चंद्रशेखर विजयजी महाराजा

* प्रकाशक *

कमल प्रकाशन ट्रस्ट

102-ए, चंदनबाला कोम्प्लेक्स, आनंद नगर पोस्ट ऑफिस के सामने, भठ्ठा, पालडी, अहमदावाद-7.

*** लेखक ***

युगप्रधान आचार्य सम प.पू.पंन्यास श्री चंद्रशेखरविजयजी महाराज साहेब

*** अनुवादक ***

डॉ. रजनीकान्त शान्तिलाल शाह, (M.A, Ph.D)

करजण

*** सहयोग ***

श्री पवनभाई बैद, (C.S) **सुरत**

*** आवृत्ति ***

हिंदी आवृत्ति : 1000

गुजराती आवृत्ति में 28000 **नकल छप चुकी है ।**

मूल्य : 70/-

*** प्राप्ति स्थल ***

कमल प्रकाशन ट्रस्ट

102-ए, चंदनबाला कोम्पलेक्स,
आनंद नगर पोस्ट ऑफिस के सामने, भट्ठा,
पालडी, अहमदावाद-7.

नरेश भाई

373, मिंट स्ट्रीट, राजेन्द्र काम्पलेक्स
(महाशक्ति होटल के पास) चेन्नई-79
फोन: 9841067888

*** मुद्रक ***

DESIGN & PRINTED BY

Firsst Look
IMPRESSION GUARANTEED....

9597511135

कहाँ क्या पढेंगे ?

क्रमांक	कहानी का शीर्षक	पृष्ठांक
1.	सत्संग की महिमा	09
2.	निःस्पृहता :गांधीजी की	11
3.	बोध की रीत	12
4.	आबरू तो बचानी ही है	13
5.	कौन बेहतर ? पशु या मनुष्य	14
6.	भेरुशा की कैसी करुणा !	15
7.	ऐसी लघुता प्राप्त करो	16
8.	प्रेम से जीतो	17
9.	हम पांच नही ,एकसौ पांच	18
10.	हक का ही लिया जा सकता है	19
11.	दलीलबाजी से बचने में ही लाभ है	20
12.	कितनी ऊँची नैतिकता :पूणीया श्रावक की	21
13.	बिन मांगा दान ही सच्चा दान	22
14.	कब समझ में आयेगा कि लक्ष्मी का निवास गोबर में है ?	23
15.	घेवर के लिए अनीति और आघात	24
16.	तुकाराम की नैष्ठिकता	25
17.	मीठा कुम्हार की नैतिकता	26
18.	जो मन रहित है वही शिष्य	27
19.	दो संन्यासी	28
20.	सेठ ने चोर को शाहूकार बनाया	29

क्रमांक	कहानी का शीर्षक	पृष्ठांक
21.	युद्धव्यस्त हुए भरत और बाहुबलि	30
22.	कर्म का इन्साफ अटल है	31
23.	अब हमारा धर्मपंथ मजबूत होगा	32
24.	अटल ऐसी मौत से क्या डरना ?	33
25.	बादशाह कौन ?	34
26.	ज्ञान रहित अंधकार	35
27.	कर्मराज की दण्ड देने की अनोखी रीति	36
28.	हाय लेनेवाला कभी सुखी नही होता	37
29.	भारत इसी प्रकार ही बरबाद हुआ होगा ना ?	38
30.	शर पर कफन बांधकर ही काम करें	39
31.	करुणा का जवाब ? कृतज्ञता से	40
32.	कितना क्रूर अकबर !	41
33.	कब क्या होगा ? क्या खबर ?	42
34.	पुण्य जब खत्म हो जाता है तब.....	43
35.	एक दिन तो मरना ही है	44
36.	हे शराब ! तुम्हारे शिकार में	45
37.	मौत के क्षणों में भी सिनेमा त्याग से ईंकार	46
38.	कोई संतान भी दे दे	47
39.	मुस्लिम में भी दया !	48
40.	रमण महर्षि की बोध की रीति ।	49
41.	बेटा ! मोडर्न कैसे बनोगे ?"	50

क्रमांक	कहानी का शीर्षक	पृष्ठांक
42.	शिवाजी के वफादार सैनिक	51
43.	पापी को भी प्रेम से वश कर लो	52
44.	अशुभ निमित्ति की घातकथा	53
45.	खुमारी एक क्षत्रिय कन्या की !	56
46.	अनासक्ति; भरत की	48
47.	आज कल रावण कितने ?	59
48.	कत्ल का एक कातिल पल	61
49.	महासती पिंगला	64
50.	जैनाचार्य की अपूर्व दूरदर्शिता	68
51.	त्यागीके सुख को भोगी क्या समझे	70
52.	जैनाचार्य की दूरदर्शिता (गीतार्थता)	72
53.	परलोक दृष्टि और पापभीरुता	74
54.	करामाती गुरु	76
55.	राग का अंजाम	78
56.	जो आग को छूता है उसे तो जलना ही है	80
57.	दोषी कौन ?अपराधी या अपराध का सर्जक	82
58.	हा प्रायश्चित विपुल झरना	84
59.	उद्धत शिष्य और महान गुरु	86
60.	धन तो आपके पास ही है	88
61.	हे पाप ! तुम्हारा जन्म मन से....	89
62.	अन्य द्वारा की गई निंदा से व्यथित न हों !	89

क्रमांक	कहानी का शीर्षक	पृष्ठांक
63.	हाय गरीबी	90
64.	क्या अस्पतालें खतरनाक कही जा सकती हैं ?	90
65.	मूल्य पाण्डित्य का नही करुणा का है	91
66.	ज्ञान की पात्रता ,आर्द्र हृदय	92
67.	अन्य का भी विचार किया जाये	92
68.	क्या वानरों से भी अधम हैं नर ?	93
69.	बाहर करुणा ,भीतर कठोरता	93
70.	धर्म से मांगने की मूर्खता क्यों कर रहे हो?	94
71.	संतों की खुमारी	94
72.	कलिकाल साधुत्व	95
73.	आइन्स्टाईन का पश्चात्ताप	95
74.	इच्छा संसार की और मांग मोक्ष की	96
75.	यह धरती है राणा प्रताप की	96
76.	नजर नजर में फर्क	97
77.	पैसे से धर्म या उसके त्याग से	97
78.	विद्यालयों में हो रहे कुसंग से बरबादी	98
79.	साधुभक्ति की अनोखी भूख	98
80.	दयालु ईश्वरचंद्र	99
81.	कर्तव्यनिष्ठा	100
82.	क्या सौबत का असर होता है ?	100
83.	संस्कारों की तीव्र शक्ति	101

क्रमांक	कहानी का शीर्षक	पृष्ठांक
84.	तुम अखण्ड सौभाग्यवती होना	101
85.	धूर्त धृतराष्ट्र	102
86.	हेमचंद्रसूरिश्वरजी की माता पाहिनी	103
87.	भवदेव और नागिला	104
88.	नरकेसरी मगधराज	112
89.	महात्मा नंदिषेण	113
90.	युद्ध का अंजाम	123
91.	जमालि प्रथम विद्रोही साधु	125
92.	कर्ण की वफादारी	126
93.	छह लेश्याएँ	128
94.	बैजु बावरा :शत्रुता को मारो ,शत्रु को नह	129
95.	ऐसा साधु वेष किस काम का ?	131
96.	तीर्थरक्षक सेठ शांतिदास	132
97.	हमारे पूर्वजों की नीति -कुर्सी को सलाम	134
98.	खुमारीवाले खुशालचंद	136
99.	हमेशा अन्य का भी विचार किया जाये ।	138
100.	संगठन में ही जीत	139
101.	शक्ति,बुद्धि और सामग्री का सदुपयोग कीजिए	140
102.	जहाँ देह का होश नही वहाँ ही सच्चा ध्यान : सच्ची समाधि	141
103.	विक्रमसिंह का बलिदान	142

क्रमांक	कहानी का शीर्षक	पृष्ठांक
104.	धर्मपत्नी ! शराबी पति !	143
105.	" मैं कुत्ते की मौत मरूँगा पर...." स्वीकार्य है ।	144
106.	जहाँ चमत्कार वहाँ नमस्कार	145
107.	अन्याय के विरुद्ध अकेले भी टक्कर लो	146
108.	भलाई की भव्यता	147
109.	धर्म के प्रति अत्यंत निष्क्रिय लोग	148
110.	गौतम बुद्ध के काम्पिल्यपुर का नाश	149
111.	जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि	150
112.	मृत्यु का स्मरण अनासक्त बनाता है	151
113.	सिद्धि के लिए कितना प्रचण्ड पुरुषार्थ	152
114.	कभी कभार कैसी गडबड हो जाती है ?	153
115.	युधिष्ठिर कैसे नीडर सत्यवादी !	154
116.	जीभ के कचर जाने से क्या दांत तोडा जाता है ?	155
117.	हमेशा अन्य का विचार करो	156
118.	एकदम किसी का खण्डन नही करना चाहिए	157
119.	अपात्र को दिया नही जाता	158
120.	गुरु की भी कसौटी	159
121.	अन्य का भी विचार करो	160
122.	जल्दी मरने की होड	161
123.	जैन ही जगत को हिंसा से बचा सकेंगे	162
124.	बैर का विसर्जन	163

क्रमांक	कहानी का शीर्षक	पृष्ठांक
125.	कितने चुस्त साधु !	164
126.	अंतकाल में तो संभल जाओ	165
127.	कैसा अविश्वासी संसार !	166
128.	नीति के धन का चमत्कार	167
129.	चीमन मारवाडी का दुसरा नाम “खुमारी”	168
130.	सुभाष :””मुझे अपना “सर्वस्व” दे दो ।	171
131.	क्रान्तिवीर भगतसिंह	174
132.	मानवता के धर्म की भी कैसी ताकत !	176
133.	धर्म में इतना धैर्य होना चाहिये ।	178

1. सत्संग की महिमा

उस आदमी का नाम मालूम नही क्या होगा ? पर उसके काम के कारण वह अंगुलिमाल के नाम से प्रसिद्धहुआ ।

हाँ ,'जेकिल और हाईड ' की कथा में वर्णित वह हाईड था । दुष्टता का वह जीवंत प्रतीक था ।

कुछ हालातवश, किसी कुसंग के कारण ही उसका जीवन विषाक्त हुआ था ।

वह भयानक कातिल हो गया था । उसका संकल्प था कि यथासम्भव जल्दी मुझे एकसौ आठ ऐसे लोगों की हत्या करनी है जिन्होंने समाज में, कला के क्षेत्र में, विषय में लब्धप्रतिष्ठ हो और बत्तीस लक्षणवाले हो । बहुत कम समय में उसने एकसौसात लोगों की हत्या कर दी । उन मृतःदेहों से वह मात्र एक उंगली ही काट लेता था । उसकी माला बनाकर गले में डालकर वह गौरवानुभव करते हुए घूमता-फिरता था ।

अब वह जगत में उत्कृष्ट प्रतिष्ठा को प्राप्त किसी आखिरी महापुरूष का भोग लेने के लिए वह इधर-उधर घूमने लगा ।

एक दिन सैकडों लोगों के साथ चले आ रहे एक प्रतिभासंपन्न पुरूष को देखा । उसने पता लगा लिया कि वह गौतम बुद्धहै ।

उसके भीतर छिपा बैठा 'हाईड' कुलबुलाने लगा । वह बुद्धकी ओर भागा ।

परंतु अफसोस ! बुद्धकी करुणाप्लावित मुद्रा का अत्यंत निकट से दर्शन होते ही उठायी गई तलवार हाथ से गिर गई । उसकी आँखें बहने लगीं । ना, यह केवल अश्रु नही थे, अश्रुओं के रुप में प्रवाहित हो रहा सारे पापों का स्वीकार था !

बुद्धने उसे आशीर्वाद दिये । असंख्य लोगों की हत्या के प्रतीक ऐसी उंगलियों की माला को उसने फेंक दिया ।

जीवन को एक नई दिशा दे दी । ऐसा होता है सत्संग का प्रभाव...! 'एक घडी, आधी घडी....'

2. निः स्पृहता :गाँधीजी की

महात्मा गांधीजी की पदयात्रा का किसी एक छोटे से गाँव में पडाव था । उस यात्रा में कस्तुरबा ,मोरारजीभाई आदि जुडे हुए थे ।

दूसरे दिन दुपहर में कोई गांधीभक्त उनके पडाव पर गया । उस समय वहाँ कस्तुरबा हाजिर थीं । भक्त ने अपनी जेब से साढे तीन रुपये निकाले ।

अत्यंत भावविभोर होकर उसने यह राशि कस्तुरबा के हाथ में रखते हुए कहा कि 'इन पैसों में से आप अपने मनपसंद फल लाना और आप तथा बापुजी उनका सेवन करना । इससे मुझे बडी खुशी होगी ।"

भोली तथा भद्रिक स्वभावी कस्तुरबा ने उस राशि का सप्रेम स्वीकार किया ।

रात को जब गांधीजी लौटे तब कस्तुरबा ने सारी बात कहते हुए वह राशि बापू के हाथ पर रखी ।

अत्यंत क्रोधित होकर बापू ने वह राशि जमनि पर फैंक दी। उसके बाद कस्तुरबा की अति कटु शब्दों में खबर लेते हुए उन्हेंने कहा कि "ऐसे अनधिकार और हराम के पैसे तुम कैसे ले सकती हो ?भारत के करोडों लोग भूख से मर रहे हों तब ऐसे बिना पसीना बहाये ही मिलनेवाले पैसों से हम फल कैसे खा सकते हैं ? तुम मेरी धर्मपत्नी होकर भी तुम्हारे अंदर इतनी समझ नही है? यदि इतना भी तुम्हारी समझ में न आ रहा हो तो तुम मेरे घर से चली जाओ । तुम्हारा और मेरा कभी भी मेल जमेगा नही !'

लगभग तीन घंटे पर्यंत गांधीजी कस्तुरबा को कोसते रहे ।

बेचारी कस्तुरबा ! बोले तो क्या बोले ? क्षमा याचना करते हुए आँसू बहाती रही ।

उस समय मोरारजीभाई वहाँ उपस्थित थे । पत्नी के प्रति पति का यह आक्रोश देखकर उन्होंने कहीं इस प्रसंग को जोडते हुए कहा कि "ऐसा कठोर पति मैंने और कोई देखा नही है ।'

3. बोध की रीत

गांधीजी के जीवन में एक अनोखी घटना घटी।

काठियावाड (सौराष्ट्र -गुजरात का एक हिस्सा) का कोई एक गाँव था। किसी सभा को संबोधित करने के लिए उन्हें उस गाँव में जाना हुआ। जिनके घर उन्हें रुकना था ,उस घर में जब उन्होंने प्रवेश किया तब उनके आंगन में निरा विचित्र कहा जा सके ऐसा बंदनवार बांधा हुआ था।

वह था तीखी मिर्च का बंदनवार।

कुछ देर तो गांधीजी उस बंदनवार को देखते ही रहे। यजमान भी बिना कुछ बोले चूपचाप खडे रहे।

जब गांधीजी की बेचैनी बढ गई तो उन्होंने यजमान से कहा :' मेरी समझ में यह नही आ रहा है कि आपने मिर्ची का बंदनवार क्यों लगाया है ? मैंने अपनी जिंदगी में ऐसा बंदनवार कभी देखा नही है। क्या मेरे स्वागत के लिए यह बंदनवार लगाया गया है ?"

गांधीजी की जिज्ञासा को ऐसे चरमसीमा पर देखकर यजमान ने कहा :'बापू ! है तो कुछ ऐसा ही।

हम गाँववालों ने इस प्रकार आपका अभूतपूर्व स्वागत करने का निर्णय किया है । ' गांधीजी ने पूछा :' पर क्या उसकी कोई वजह है ?"

'हाँ बापू ! बिला वजह तो कहाँ कोई कार्य होता है ? आप हमारी बात शान्ति से सुनिये।"

'बात कुछ ऐसी है कि विगत कुछ समय से अखबारों में छपते आपके व्याख्यान पढकर हमारे मन पर ऐसा असर हुआ है कि आप अपनी बानी में अतिरेकी ,अनुचित मीठास का प्रयोग करने लगे हैं। यह जमाना अब इतनी मीठास का रहा नही है। यह जमाना तो मौका पडने पर तीखा होना पडे ऐसा है। आपको यह बात समझाने के लिए हमने तीखी मिर्च का बंदनवार लगाया है।'

गाँववालों की बोध देने की इस अनोखे ढंग से गांधीजी बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने कहा कि 'ठीक है ,अब हमारे प्रवचन सुनना। कितना तीखापन और कटुता होती है ,यह अनुभव करना। समय आने पर तीखा होना मुझे भी आता है ,हाँ।'

4. आबरू तो बचानी ही है

बनारस यूनिवर्सिटी के निर्माण के लिए पण्डित मदनमोहन मालविया को विपुल धनराशि की आवश्यकता थी। इसे प्राप्त करने के लिये वे स्वयं घूमते रहते थे। भीख मांगते थे,ऐसा करने में उन्हें किसी प्रकार की शर्म या संकोच नही था। वे कहते थे :' यह कोई मेरे अपने लिये है कि मुझे भीख मांगने में शर्म का अनुभव हो !'

एकबार वे अबजोपति निजाम के पास गये। निजाम ने उन्हें कुछ भी देने से इन्कार कर दिया। मालवियाजी ने कहा :'साहब ! मैं कुछ भी लिये बिना यहाँ से हटनेवाला नही हूँ।'

मालविया को वहाँ घंटों बैठे देखकर निजाम को गुस्सा आया। गुस्से में आकर उन्होंने पैर की मोजडी फेकते हुए कहा कि 'ले जाइए, मेरी तरफ से यह भेंट।'

'आपका पुराना जूता भी हमारे भाग्य में कहाँ से ! धन्य घडी,धन्य भाग्य ! कहते हुए मालवियाजी ने अत्यंत आदर के साथ वह जूता अपने शाल में लपेटा और बिदा हुए।

दूसरे दिन बीच बाजार खडे होकर उस जूते की निलामी शुरु की। निजाम के मुनिम ने यह दृश्य देखा। मुनिम ने मालवियाजी को स्पष्ट शब्दों में ऐसा कहते हुए सुना कि 'यह जूता निजाम की ओर से यूनिवर्सिटी के फंड में भेंटस्वरूप दिया गया है।'

निजाम के अंधे भक्तों ने उसे पाने के लिए बोली लगाना शुरू कर दिया और पूरे ढाईलाख रूपयों की बोली बोली गई। दूसरी ओर मुनिम ने जाकर निजाम को बताया कि "ऐसे तो आपकी इज्जत पर कीचड ऊछलेगा। आपकी बदनामी होगी। उस जूते को वापस लेने के लिए चाहे जितनी बोली लगानी पडे, लगाकर आपको वह जूता वापस लेना ही होगा।'

निजाम घबडा गये। मुनिम को खुली छूट के साथ बाजार भेजा। ढाई करोड की बोली लगाकर मुनिम ने वह जूता वापस पा लिया।

मालवियाजी के मन में उस समय कौन से भाव उद्वेलित हुए होंगे,उसकी तो कल्पना ही क्या की जा सकती है ?

5. कौन बेहतर? पशु या मनुष्य

लंका में रावण की राक्षसियों ने सीता को परेशान किया है यह जानकर क्रुद्धहुए हनुमान ने उन सब का वध कर देने के लिए सीता से आज्ञा मांगी । सीता ने ऐसा करने से रोकते हुए एक कथा सुनाई । बन में एक बाघ एक आदमी का पीछे पड गया था । अतः वह आदमी दौडकर एक पेड पर चढ गया । पेड पर एक भालू सोया हुआ था और बाघ नीचे खडा था । भय से काँपते हुए इन्सान को भालू ने प्यार दिया ।

रात होने पर दोनों ने आधी आधी रात जागने का निर्णय किया पहले भालू ने जागरण शुरू किया । उसकी गोद में वह आदमी गाढ नींद सो गया । बाघ ने भालू से कहा कि 'ये मनुष्य बहुत नीच स्वभावी होते हैं । जब उसकी जागने की बारी आयेगी तब वह तुम्हें मेरे हवाले कर देगा । इससे अच्छा यह होगा कि तुम अभी उसे नीचे फेंक दो । हम दोनों का काम हो जायेगा ।'

वफादार भालू ने ऐसा करने से साफ इन्कार कर दिया । आधी रात बीतने पर जगने के लिए मनुष्य की बारी आयी । भालू तो गहरी नींद सो गया । बाघ ने उस आदमी को लालच देते हुए कहा :' तुम मुझे यह भालू मेरे हवाले कर दो, अन्यथा सुबह होने पर वह तुम्हें मार ही डालेगा ।'

उस आदमी ने भालू को नीचे गिरा दिया । बाघ उसे मारकर खा गया ।

'हनुमान ! सीता ने कहा ,'मनुष्य मात्र में अनेक कमजोरियाँ होती ही हैं । रावण की राक्षसियों ने मुझे जिस प्रकार आतंकित किया, उसमें उनका क्या दोष ?उन्हें तो राजा रावण को रिझाने के लिए ऐसा करना ही पडता है पर क्या हमें उनसे दुष्ट व्यवहार कर सकते हैं ?हमें तो उनके प्रति करुणासभर रहना चाहिए ।'

सीताजी की ऐसी सर्वस्पर्शी करुणा को देखकर हनुमान ने उनकी भावपूरित वंदना की । हाय ! सामने आ रही भैंस की चाल पर से कल्पना की जा सकती है कि पास आने के बाद वह शींग मारेगी या नही ?

काश ! लेकिन मनुष्य किसी रूप में नही पहचाना जा रहा !

6. भेरूशा की कैसी करूणा!

भारत पर आक्रमण कर विजयी हुए हुमायूँ ने नौहजार भारतीयों को कैद कर लिया। उसने अपने निजी लोगों से कहा कि 'इन सारे कैदियों को विदेश ले जाओ पर रास्ते में उनको इतना आतंकित कर देना, इतना तंग करना कि वे मेरे वतन तक पहुँचते पहुँचते मर जाये।'

बादशाह की बात का अमल शुरू हुआ। रास्ते में भेरुशा नामक एक जैन का गाँव पडता था। कोडों की मार मारते हुए पशुओं से भी बदतर रूप से उन युद्धकैदियों ले जाते हुए देखकर भेरुशा का दिल रोने लगा।

उसने बहुत अनुनय-विनय करके उस काफिले को अपने गाँव में रुकवा दिया। बाद में खूब नजराना लेकर वह दिल्ली पहुँचा। उसने हुमायूँ के चरणों में वह विपुल धनराशि रख दी।

प्रसन्न हुए हुमायूँ ने कहा :'यह सब किस लिये ?'तुम्हें क्या चाहिये ?'

भेरुशा ने कहा कि "एक कोरे कागज पर आपके हस्ताक्षर। मैं उसका ऐसा उपयोग करूँगा जिससे आपकी प्रतिष्ठा को चार चांद लग जायेंगे।'

हुमायूँ ने हस्ताक्षर करके भेरुशा को वह कागज दिया। उसमें भेरुशा ने लिखा 'नौहजार कैदियों को सम्मानपूर्वक मुक्त कर दिया जाये।"

यह कागज लेकर भेरुशा अपने वतन गया। उस हुक्म के आधार पर कैदियों को मुक्त कर दिया गया तब उन्होंने बादशाह की महरबानी मानकर उसके नाम का गगनभेदी जयकारा बुलाया। इस प्रकार अविरत जयकारा करते हुए अपने अपने वतन पहुँच गये।

बादशाह को जब इस बात का पता चला तब वह भी अति प्रसन्न हुए।

7. ऐसी लघुता प्राप्त करो

किसी भी पत्र का तुरंत उत्तर देने की आदतवाले विनोबा ने एक दिन पत्र पढते ही नाराज होकर उस पत्र को फाड दिया।

पास बैठे हुए कमलनयन बजाज ने उस पत्र के टुकडों को जोडकर पढा। उन्हें पता चला कि वह पत्र तो गांधीजी का लिखा हुआ था।

बजाज ने विनोबा से पूछा :' बापू का पत्र ! दुनिया के किसी भी व्यक्ति को प्राप्त हो तो वह पागल हो जाये। जान से भी ज्यादा सम्हाल कर रखे। आपने यह क्या कर दिया ? क्यों किया ?"

जवाब मिला कि जिस पत्र में गलत बात की गई हो, ऐसे पत्र को रखे रहने से क्या लाभ ? चाहे फिर पत्रलेखक कोई भी हो। उसका महत्व क्या ?

बजाज ! आपको तो मालूम है ना कि बापू ने उस पत्र में मेरी बहुत बढा चढाकर प्रशंसा की है ! उन्होंने मुझे लिखा है कि ' आपके जैसा सत्पुरुष मैंने इस संसार में देखा नही है।"

क्या यह अतिरेकी झूठ नही है ? मुझे तो लगता है कि पत्र लिखनेवाले का दीमाग ठिकाने पर नही होगा, अन्यथा वह ऐसा लिखने की भूल कर ही नही सकता।

असत्य बातों का प्रमाण रखा नही जा सकता, मेरी ऐसी समझ के कारण मैंने उस पत्र को तुरंत फाड दिया है।

'और एक बात यह भी स्पष्ट कर दूँ कि कदाचित मान भी लें कि बापू का विधान सच है तब भी ऐसे विधानवाला पत्र सम्हाले रखने से मुझ में कभी दर्प जगने से बडा नुकसान होनेवाला है।"

विनोबा की इस लघुता को प्रत्यक्ष अनुभव करते ही बजाज आश्चर्यमुग्ध हो गये।

8. प्रेम से जीतो

एक चोर था।

एकबार वह किसी संन्यासी की कुटिया में चोरी करने के लिए गया।

रात के बारह बज रहे थे। संन्यासी अभी जग रहे थे। प्रभु-नाम स्मरण कर रहे थे।

चोर ने यहाँ –वहाँ टटोला पर कुछ हाथ नही लगने पर बाहर निकलने लगा।

तब संन्यासी ने उसे रोककर कहा :'भाई ! फिक्र मत करो। कुछ तो तुम्हें मिलेगा ही। चलो,मैं भी तुम्हारी मदद करता हूँ। संन्यासी को दस रुपये का नोट मिल गया। उन्होंने उसे चोर को दे दिया।

उस वक्त कडाके की ठण्ड थी। संन्यासी ने अपने शरीर पर लपेटा हुआ कम्बल उसके शरीर पर ओढाया।

अपने चौरकर्म से शर्मिंदगी अनुभव कर रहे चोर ने वह कम्बल लेने से बहुत इनकार किया लेकिन संन्यासी ने तो अपनी मनमानी ही की।

चोर वहाँ से बाहर निकला। अन्य आरोप के तहत उसी रात पुलिस ने उसे धर लिया। उससे कम्बल आदि जब्त कर लिया। 'यह कम्बल संन्यासी का है 'ऐसा चोर से जानकर पुलिस कम्बल लिये उस संन्यासी के पास गई।

संन्यासी ने कहा :' अरे ! यह कम्बल उसने चोरी नही किया है। मैंने उसे प्यार से उपहार के रूप में दिया है। पुलिस ने वह कम्बल चोर को वापस लौटा दिया।

एक साल की सजा से मुक्त होते ही वह चोर सीधा संन्यासी के पास गया। उनके पैरों में पडकर बहुत रोया। बाद में उसने संन्यास ग्रहण कर के अपना सारा जीवन प्रभुभक्ति तथा पर पीडा हरण में व्यतीत किया।

9. हम पांच नहीं, एक सौ पांच

मगध और कलिंग के बीच एक समय था जब भारी बैर भाव सी अनबन चल रही थी। भारत के दोनों महाराज्यों की एक ही मनोवृत्ति थी कि एक दूसरे को खत्म करने के लिए एक भी मौका गँवाना नही है।

इस मौके का फायदा ऊठा लेने का विचार ग्रीक राजा डेमीट्रीप्स के मन में जगा। उसने मगध पर हमला करने का आयोजन किया लेकिन कलिंग के सहयोग के बिना वह अकेला मगध पर विजय प्राप्त नही कर सकता था। 'दुश्मन का दुश्मन हमारा दोस्त 'इस न्याय से उसे पूरी आशा थी कि उसे कलिंग से सहयोग मिलेगा।

एक दिन डेमीट्रीप्स ने कलिंग नरेश महाराजा खारवेल के पास दूत भेजकर मगध पर किये जानेवाले आक्रमण में सहायक होने की बिनति की। (खारवेल जैन धर्म का वफादार अनुयायी था.)

खारवेल ने स्पष्ट शब्दों में उस दूत को बताया कि 'अपने नरेश से कहना कि मगध के साथ बेशक मेरी कट्टर दुश्मनी है पर तुम्हारे जैसे परदेसी राजा को तो भारत में प्रविष्ठ कराने के कार्य में मैं कदापि सहायक नही हो सकता। इतना ही नही यदि तुम्हारा नरेश अकेले ही मगध पर आक्रमण करेगा तो मैं मगध के हित में अपनी समग्र ताकत लगाकर तुम्हारे राजा से टक्कर लूँगा और उसे घोर पराजय दूँगा।'

'हम हिन्दुस्तान के लोग तुम्हारे जैसे विदेशियों के विरुद्धतो एक होकर ही खडे रहेंगे।'

दूत ने ग्रीक नरेश को कलिंगराज का तीखा संदेश सुनाया।

फिरभी ग्रीस ने मगध पर आक्रमण करने का दुस्साहस तो कर ही दिया तब कलिंग नरेश ने अपनी समग्र सेना मगध के हित में भेजकर ग्रीक नरेश का ऐसा तो जमकर मुकाबला किया कि उसे भौंडे पराजय के कलंक के साथ भारत से भाग जाना पडा।

जब भी ऐसी एकता का साधन हुआ है तब तब भारत को कोई पराजित नही कर पाया है।

लेकिन अरे ! वह बारंबार पैदा होनेवाली यादवास्थली !.....

10. हक का ही लिया जा सकता है

विश्वसरैया !

बहुत बडे आदमी ! अनेक विषयों पर बहुत सुंदर लिख सकनेवाला व्यक्ति !

एक दिन किसी ने उन्हें किसी खास विषय पर लिख देने के लिये बिनति की । बिनति करनेवाले का आग्रह था कि निबंध तो उत्कृष्ट कोटि का ही लिखा जाना चाहिये ।

विश्वसरैया ने स्वीकार किया । पारिश्रमिक के रूप में सात रुपये तय किये गये ।

दिये गये विषय पर खूब जहमत ऊठाकर कुछ ही दिनों में विश्वसरैया ने निबंध तैयार कर दिया और पूर्व निश्चित दिवस पर वह निबंध लेने के लिये आया ।

उसने निबंध का कुछ हिस्सा पढा । बहुत पसंद आया और पारिश्रमिक के रूप में सात रुपये अदा कर दिये ।

उस व्यक्ति ने अपना यह निबंध अपने मित्रों को पढने के लिये दिया ।

जिन्होंने भी उस निबंध को सांगोपांग पढा, वे सब उसकी उत्कृष्टता पर आश्चर्यमुग्ध हो गये । सब का एक ही अभिप्राय रहा कि यह निबंध 'अति सुंदर' है । इतना ही नही -ऐसे उत्कृष्ट निबंध का कद्र मात्र सात रुपयों से ही नही किया जाना चाहिये ।

यह जानकर निबंध लिखवानेवाले बंधु विश्वसरैया के पास गये और कहा कि "ऐसे उत्कृष्ट निबंध का कद्र और भी अच्छी तरह से करने के लिये मेरे मित्रों ने सुझाव दिया है । अतः मैं आपको कुछ ज्यादा राशि देने के लिए आया हूँ ।'

विश्वसरैया ने कहा ,'सात रुपयों का जो पारिश्रमिक निश्चित किया गया था ,वह उत्कृष्ट निबंध लिखकर देने के लिये ही था ।' अतः मैं अब उस उत्कृष्ट निबंध लिख देने के लिए एक भी पैसा ज्यादा नही ले सकता ।

यदि लूँ तो वह अन्यायपूर्ण होगा ।'

11. दलीलबाजी से बचने में ही लाभ हैं!

एकबार पवन और सूर्य के बीच बात हो रही थी तब धरती पर से एक बूढा काला कोट पहनकर जा रहा था। उसे देखकर पवन ने सूर्य से कहा :'मुझ में इतनी ज्यादा ताकत है कि इस बूढे के कोट को क्षणमात्र में उडा दूँ।'

सूर्य ने मात्र मुस्कान बीखेरी। न तो उसके सामने कोई तर्क ही किया और न कोई बात ही की।

इस तरफ पवन ने सनसनाकर तेज गति से बहना शुरू कर दिया। यह देखकर सूर्य बादलों की ओट में चला गया।

उस बूढे ने कोट को तेज पवन से उडने से बचाने के लिये दो हाथों से जकडे रखा।

इससे उत्तेजित पवन और ज्यादा ताकत आजमाने लगा। इस तरफ बूढा भी और जोर लगाकर कोट को पकडने लगा।

आखिरकार पवन थक गया और वहाँ से चला गया।

कुछ देर बाद सूर्य बादल की ओट से बाहर आया। चारों तरफ किरणें फैलने से आतप फैल गया।

एक तरफ पवन का बहना बंद हुआ तो दूसरी ओर सूर्य की गरमी पड रही थी। अतः उमस बढने के कारण बूढे ने कोट उतार दिया। उसकी तह करके हाथ में लिये जाने लगा।

पवन ने दूर से यह दृश्य देखा तो वह तो दंग रह गया !

तब भी सूर्य मंद मंद मुस्कुरा रहा था। विजय के नशे की एक हल्की सी रेखा भी उसके चेहरे पर ढूँढे से नही मिलती थी।

12. कितनी ऊँची नैतिकता: पूणीया श्रावक की!

तारक तीर्थंकर देव परमात्मा महावीर का वह परम भक्त था –नाम था उसका :पूणीयो श्रावक।

प्रभु की 'अपरिग्रह' विषयक देशना ने उसके अंत:करण को ऐसे प्रभावित किया कि उसने अपना सर्वस्व धर्मकार्य में खर्च कर दिया। वह तैयार पूनी खरीदकर यथावश्यक और न्याययुक्त मुनाफा चढाकर बेचने का व्यवसाय उसने शुरू किया।

कल का पुनमचंद सेठ हमेशा के लिये पूणीयो हो गया।

एकबार महाजन की बैठक हुई। उन धनिकों ने पर्याप्त विचार कर लेने के उपरांत सर्व सम्मति से यह र्निणय किया कि 'अपनी दुकान पर पूणीयो श्रावक जब खरीद फरोख्त के लिये आये तब पूनियाँ तीन पैसे में नही पर दो पैसों में दें।

अर्थात एक पैसा कम लिया जाये जिससे कि वह चार पैसे में पुनी बेचता है तो उसे एक पैसे के बदले दो पैसे मुनाफा मिले। हम इसी प्रकार ही उसकी सहायता कर सकते हैं। अन्यथा वह किसी भी सूरत में हमारा धन उपहार के रूप में स्वीकार करेगा नही।"

दूसरे दिन पूणीयो इन जैन श्रेष्ठियों के यहाँ अपने नियमानुसार पूनियाँ खरीदने के लिये गया तब उसने सभी दुकानों पर दो पैसों का दाम जानकर उसे शंका हुई। उसने मूल्य में आये फर्क के बारे में पूछा तब उसे सही जानकारी प्राप्त हुई।

उसने नाराजगी जताते हुए व्यापारियों से कहा :'यदि मैं इस तरह दो ही पैसों से बाजार भाव से कम एक पैसे कम देकर माल खरीदूँ तो मुझे अनीति-दोष लगता है। आप मुझे बाजार भाव से ही पूनियाँ देंगे तभी मैं क्रय क्रँगा, अन्यथा अन्य व्यापारियों से क्रय करूँगा।'

पूणीया की इस उत्कृष्ट नैतिकता की वंदना करने के साथ महाजन को अपने साधर्मी बंधु को इस प्रकार सहाय करने की बात को मुल्तवी करना पडा !

13. बिन मांगा दान ही सच्चा दान!

रघु नामक एक राजा थे।

उस समय वरतनु नामक एक ऋषि का आश्रम था। हजारों बालक उस तपोवन में अध्ययन करते थे। जो अभिभावक अवस्था के कारण अपने व्यवसाय से अवकाश ग्रहण किये हों ऐसे अभिभावक अपने व्यवसाय की शिक्षा ऐसे व्यवसाय से जुडे अभिभावकों के बालकों को देते थे।

धनवान गृहस्थ और राजा ऐसे तपोवनों को आवश्यक सारी सामग्री –धन-दौलत आदि हमेशा पूरी करते थे क्योंकि वे मानते थे कि ऐसे तपोवन से संस्कार प्राप्त नयी पीढी से ही मनुष्य और मुनि पैदा होते हैं जो राष्ट्र की शान है,धर्म के ज्योतिर्धर हैं।

पर ऐसा क्यों हुआ यह समझ में नही आया कि वरतनु ऋषि के तपोवन की ओर किसी का लक्ष्य गया ही नही। परिणामस्वरूप ऋषि को चौदह करोड सोनामुहरों की आवश्यकता हुई।

वरतनु ने अपने तपोवनी बाल कौत्स से रघु राजा के समक्ष अदबपूर्वक मौन भावपूर्वक चूपचाप खडे रहने का आदेश दिया।

दस वर्षीय सशक्त बालक कौत्स रघुराजा के समक्ष अदबपूर्वक चूपचाप खडा रह गया।

रघुराजा ने यह जानने का निष्फल प्रयास किया कि वह क्यों आया है ? कुलपतिजी ने उसे क्यों भेजा है ?"

कौत्स तो कुछ देर बाद चूपचाप वहाँ से चल दिया।

पर्याप्त जाँचपडताल के बाद रघुराजा को खबर हुई कि उसकी लापरवाही के कारण आश्रम को चौदह करोड सोनामुहरों की जरूरत पडी है।

राजा ने कुबेर को ललकारा ! उसे वश में किया और उसके द्वारा जब वह राशि आश्रम में पहुँचायी गई तब उसे चैन आया।

14. कब समझ में आयेगा कि लक्ष्मी का निवास गोबर में है?

महाभारत के अनुशासन पर्व का (अ.८१,श्लो.२३) यह प्रसंग है।

लक्ष्मीदेवी के मन में एकबार विचार आया कि 'गाय सबसे नर्म, निर्दोष और पवित्र है। अतः मैं उसमें निवास करूँ।"

ऐसा सोच विचारकर वह गायों के समूह के पास गई और अपना विचार नम्रतापूर्वक पेश किया। गायों ने कहा ,'देवी ! हम आज शाम ईकट्ठा होकर इस बात पर निर्णय करके आपको जवाब देंगी। आप कल सुबह पुनः आइएगा।'

शाम को बैठक हुई। पर्याप्त विचार विमर्ष के उपरांत सर्व सम्मति से यह निर्णय लिया गया कि - 'लक्ष्मीदेवी को अपने गोबर में निवास करने के लिए कहा जाये। यह गोबर भी इतना ही पवित्र है।'

दूसरे दिन लक्ष्मी जी पधारीं ।गायों ने अपना अभिमत बताया। उन्होंने लक्ष्मीदेवी से कहा ,'शकृन्मूत्रे निवसत्वम्।'- हे देवी ! तुम हमारे गोबर में रहो।'

कहा जाता है कि लक्ष्मी ने तब से गोबर में अपना निवास कर लिया।

महाभारतकार की इस बात में अत्यंत महत्वपूर्ण यह बात बताई गई है कि भारतीय प्रजा की समृद्धि(लक्ष्मी) गोबर में है। यदि पशु नही रहा तो गोबर नही रहेगा। यदि गोबर खत्म तो भारत की समृद्धिभी खत्म। भारत को भारतीय परम्परा की पद्धति से ही समृद्धकिया जा सकेगा। कम्प्युटर से या टेकनोलोजी के युगावतार से या यंत्रमानवों या रोबोट्स से भारत समृद्धहोने के बदले अधिक और अधिक भयानक गरीबी, बेरोजगारी, बीमारी और भूखमरी के चक्कर में पीसे जाकर खत्म हो जायेगा।

इण्डस्ट्रीज की धूँए उगलनेवाली चिमनियाँ से निकले धूँए से भारत के आकाश पर काले बादल मंडरायेंगे। उसमें गरीबी आदि चार कारणों से अकाल मृत्यु को प्राप्त करोडों भारतीय लोगों के अग्निसंस्कार के धूँओं का मिश्रण आधे से भी कमतर होगा ।इण्डस्ट्री और पशुधन के बीच कोई मेल नही जमता। चिमनियाँ और उपले साथ नही रह सकते।

15. घेवर के लिए अनीति और आघात!

वह सेठ बहुत नीतिशील था ! अपने कारोबार में एक पैसे की अनीति करने से सिहर उठनेवाला सेठ अनीति कैसे कर सकता है ? पर एक दिन विकट क्षण आ ही गया। किसी निमित्त वश उसे किसी के घर भोजन करने के लिए जाना हुआ।

वहाँ उसने घेवर खाया। उसकी मीठास तो ऐसी दाढ में बस गई कि अपने घर भी घेवर बनाकर खाने की ईच्छा हुई।

उसके पास नीति का जो धन था, उससे ऐसा हो पाना सम्भव नही था। अतः उसने एक दिन के लिए एक ही ग्राहक के साथ मात्र बारह पैसे की अनीति करने का मन में निर्णय किया। एक दिन उसने वैसा ही किया। उसने अनीति से बारह पैसे की कमाई की।

घर पहुँचकर पत्नी से दो घेवर बनाने के लिए कहा। दूसरे दिन दुकान से मध्याह्नवेला में घर लौटकर घेवर खाने का मन में विचार किया।

पर दूसरे दिन जब वह घेवर खाने की ईच्छा के साथ भोजन करने बैठा तब उसे खबर मिली कि बेटी और दामाद दस बजे आये थे और पत्नी ने उन्हें बडे प्यार से दोनों घेवर खिला दिये।

यह सुनकर सेठ को दुःख तो हुआ पर साथ ही साथ अनीति का निष्फल पाप कर बैठने का भारी सदमा पहुँचा।

घेवर की आसक्ति ने जो जालिम पाप का आचरण करवाया, वही पाप अब उसे पीडा देने लगा। उस दिन उसने न कुछ खाया और न रातभर सो ही सका।

दूसरे दिन सुबह ऐसी आसक्ति और अनीति करानेवाली सामग्री से भरे पापी संसार का त्याग करके वह सेठ साधु हो गया।

16. तुकाराम की नैष्ठिकता

तुकाराम विठोबा का परम भक्त था।

गरीबों का मित्र था।

वह स्वयं बहुत पवित्र था।

पत्नी के कलहप्रिय स्वभाव ने उसे प्रभुभक्ति की दिशा में मोडा था।

लेकिन वह गरीब था; खूब गरीब था। शिवाजी को जब उसकी भीषण गरीबी का पता चला तब वे काँप ऊठे।

कैसे भी करके इस विषय में कुछ करने का उन्होंने संकल्प किया। तलाश करवाने पर पता चला कि तुकाराम की कुटिया में उसके घर में सारे बरतन मिट्टी से बने हुए टूटी-फूटी दशा में हैं।

दूसरे दिन शिवाजी ने पितल के सुंदर बरतन तुकाराम के घर भिजवा दिये। उस समय तुकाराम घर में नही थे। पत्नी को उन नये बरतनों ने ललचा दिया और उनका स्वीकार कर लिया। सुंदर बरतन देखकर वह बहुत राजी हो गई।

उसने फौरन मिट्टी के भांडों का निकाल कर दिया। सारे बरतन गरीबों में बाँट दिये !

शाम ढलने पर तुकाराम घर वपस लौटे। सारी हकीकत जानने पर उन्हें बडा दु:ख पहुँचा।

उनके अंतर्मन से एक ही आवाज आती थी कि अनधिकार कुछ भी हो कैसे लिया जा सकता है ?' शाम का खाना खाया पर तुकाराम ठीक से भोजन नही कर पाये। आधा खाना छोडकर गरीबों को अपने घर बुलाकर पितल के सारे बरतन गरीबों में उपहार स्वरूप बाँट दिये।

पत्नी तो चीखती –चिल्लाती रही और बरतन बँट गये। बाद में उन्होंने पत्नी से कहा 'यदि तुम्हें गरीबों में बरतन (मिट्टी के) बाँट देने का अधिकार है तो क्या मुझे वह अधिकार नही है ?"

उपरांत कभी शिवाजी ने जवाहिरात से भरा डिब्बा भेंट के रूप में भेजा था तब तो उससे घबडाकर तुकाराम घर से भाग गये थे !

17. मीठा कुम्हार की नैतिकता!

उस समय वल्लभ विद्यानगर में भाईलालभाई पटेल (सुख्यात स्थपति) मैनेजर के पद पर थे। सेक्रेटरी के कहने से मीठा कुम्हार कुछ ईंटें कम्पाउण्ड में रखकर उसका पैसा लेने के लिए भाईलालभाई के पास गया।

सेक्रेटरी ने मैनेजर से कहा कि 'साहब ! हम जो दो कमरे बनवानेवाले हैं, उसके लिए मैंने मीठा कुम्हार को ४१००० ईंटों का ओर्डर दिया था। उसके बील के रु.१४८/- उसे चुकाने हैं।'

यह सुनकर मीठा ने कहा ,'सेक्रेटरी साहब ! आप भूल कर रहे हैं। मैंने तो ज्यादा माल नही होने के कारण २६०००ईंटें डाली हैं। अतः मुझे तो रु.९६/- ही लेने हैं।'

इस विषय पर दोनों में भारी खींचातानी चली। दोनों अपनी बात पर अटल थे।

मैनेजर ने इस बात में विशेष रुचि दिखाई। सच्चाई तक पहुँचने के लिए उन्होंने ईंटों की पुनः गिनती करवाई तो मीठा कुम्हार की बात सच निकली।

अब १४८/-रुपयों के बदले ९६/-रुपयों का भुगतान किया गया।

पैसे लेकर ओफिस से बाहर निकलते हुए मीठा ने सेक्रेटरी से कहा :' साहब ! हमारे जैसे गरीबों के साथ भविष्य में ऐसी लापरवाहविाला काम कभी न करें। अनीति का एक पैसा – भूल से ही सही हमारे घर में आ जाये तो हमारा तो कुलोच्छेद हो जाये या तो एकमात्र बेटा मर जाये या जवान बहू को कैंसर लग जाये।"

उसी रात सेक्रेटरी विद्यानगर होस्टेल में पढ रहे पांच कोलेजियन विद्यार्थियों को पकडकर मैनेजर के पास ले आये। उसने कहा ,'इन लोगों की पंदह नये बल्ब की चोरी पकडी गई है ! आपको जैसा उचित लगे कीजिए।'

मैनेजर मन ही मन रो ऊठे। कहने लगे : 'कौन पढा-लिखा और कौन अनपढ !"

18. जो मन रहित है वही शिष्य

बनवास काल के दौरान एकबार मनोरम प्रदेश को देखकर रामचंद्रजी ने अपने अनन्य शिष्य को आदेश दिया,'हनुमान ! यह मनोरम स्थान है। यहाँ हमें कुछ दिन ठहरना है। अतः तुम्हें जो जगह पसंद आये वहाँ तुम पर्णकुटिर बना दो।'

राम की यह बात सुनते ही हनुमान किसी विचार में उतर गये। वहाँ से चलकर दूर किसी वृक्ष के नीचे बैठकर रोने लगे।

तीन-चार घन्टे बाद भी हनुमान के वापस न लौटने पर लक्ष्मण और बाद में सीताजी ने उसकी खोज चलाई। दोनों को हनुमान मिल गये। उन्हें फफककर रोते हुए देखकर सीताजी ने पूछा :'अरे ! इतना रोने की क्या वजह है ? क्या तुम्हारे स्वामी ने भला-बुरा कहा है ? हनुमान ! जो भी हुआ हो, हमें बताओ। हम उसका निराकारण ला देंगे।'

हनुमान ने स्वस्थता धारण करते हुए कहा :'भगवान ने मुझे आज्ञा दी है कि -तुम्हारे मन को जहाँ ठीक लगे, उस जगह पर पर्णकुटिर बनाओ।' इस आज्ञा का पालन करना मेरे लिये किसी हाल में सम्भव नही है।

अतः मैं भारी उलझन में फँस गया हूँ। हाय ! मैं अब आज्ञा-द्रोही माना जाऊँगा ? माताजी ! मेरी समस्या यह है कि मैं मन रहित हूँ। भगवान के मिल जाने के बाद मैंने अपने मन को उनमें ही विलिन कर दिया है।

जब मेरा मन ही नही है तो इस आज्ञा का पालन करूँ तो कैसे ?'

सीताजी और लक्ष्मण हनुमान की इस स्वामी भक्ति को देखकर अतिशय आनंदित हो गये।

वे हनुमानजी को रामचंद्रजी के पास ले गये। समग्र घटनाक्रम को जानकर रामचंद्रजी भी बहुत आनंदित हुए। तदनंतर अपनी मनपसंद जगह दिखाते हुए वहाँ पर्णकुटिर की रचना करने की हनुमान को आज्ञा प्रदान की।

19. दो सन्यासी

'कोई कुछ सुनता ही नही।'

आर्यावर्त्त के वैदिक धर्म के प्रखर अनुयायी संन्यासियों में तुकाराम और स्वामी रामदास का नाम अग्रगण्य माना जाता है।

दोनों समकालीन थे।

काफी समय से वे एक दूसरे से मिलना चाहते थे। एकबार दोनों की भेंट हुई परंतु नदी के दो किनारों पर आमने सामने खडे खडे। तेज गति में बहे जा रहे जल प्रवाह के चलते दोनों संन्यासियों ने अपने भक्तों के साथ परस्पर वंदना की।

कुछ समय बाद तुकाराम ने मजीरा बजाया और तुरंत पानी की धारा में फेंक दिया।

तत्पश्चात रामदास स्वामी ने शंखनाद किया और तुरंत उस शंख को पानी के बहाव में फेंक दिया।

इसका मतलब तो भक्तगण समझ नही पाया। दोनों संन्यासियों ने गूढार्थ में क्या बातचीत की, यह जानने के लिए उनके भक्त बहुत आतुर हो ऊठे।

भक्तगण ने अपने गुरुओं से इस विषय में अपनी जिज्ञासा व्यक्त की।

तुकाराम ने अपने भक्तों से कहा कि मैंने स्वामीजी से यह बात की कि -इस प्रकार मजीरे बजाते हुए प्रजाजनों को अनेक अभंग सुनाये पर सब व्यर्थ रहा। कुछ हासिल नही हुआ।

उसके बाद रामदासस्वामी ने मुझे कहा कि 'यह शंख बजाने की तरह कई प्रवचन मैंने अपने मुख से सुनाये हैं पर सब व्यर्थ। किसीने कुछ भी ग्रहण नही किया।'

दोनों की गूढ बातचीत सुनकर दोनों के भक्तगणों के शिर शर्म से नतमस्तक हो गये !

20. सेठ ने चोर को शाहूकार बनाया!

बहुत पुराने जमाने की यह बात है।

किसी एक गाँव में एक सेठ रहते थे। एक रात एक चोर सेठ के घर चोरी करने के लिए गया। चोर ने काफी माल जमा कर लिया। उसने सामान जमाकर गठरी बांधी। यह गठरी बहुत भारी हो गई थी। बहुत कोशिश करने पर भी वह उसे ऊठा नही पा रहा था।

चोर की इस रगड मेहनत से आवाज होने पर सेठ जग गये और चोर के पास गये।

सेठ ने कहा,'भाई ! तुमने बहुत माल जमा किया है, इसलिये यह गठरी तुम से ऊठायी नही जा रही ना? थोडा सा सामान निकालकर कम कर दिया होता तो यह गठरी आसानी से तुम ऊठा सकते थे पर तुम भी मेरे जैसे कंजुस लगते हो।

खैर ! जो हुआ सो हुआ। अब मैं ही तुम्हें यह गठरी ऊठाने में मदद करूँगा।' ऐसा कहकर सेठ ने गठरी ऊठाकर चोर के कंधे पर रख दी।

चोर तो बहुत शर्मिंदगी अनुभव कर रहा था। वह थोडी दूर गया कि उसे अपने पाप को लेकर बहुत पश्चात्ताप हुआ।

वह सेठ के घर की ओर वापस लौटा। उसने सेठ को जगाकर कहा ,'सारा माल-सामान वापस लौटाने आया हूँ। मैं बहुत पश्चात्ताप अनुभव कर रहा हूँ।'

सेठ ने सामान वापस लेने से इनकार कर दिया। बहुत माथापच्ची के बाद सेठ ने चोर से कहा ,'यदि तुम हमेशा के लिये चोरी करना छोड दो तो मैं सारा सामान वापस रख लूँ।

'और एक बात और ...कि जब भी तुम्हें रुपयों की जरूरत अनुभव हो तो आधीरात में भी आकर मुझ से पैसे ले लेना।

आज मैं तुम्हें नगद दो सौ रुपये दे रहा हूँ। तुझे जैसा ठीक लगे व्यापार शुरू कर देना।'

आँखों में आँसु सहित चोर सेठ के पैरों में नतमस्तक हो बिदा हुआ। चोर शाहूकार हो गया।

21. युद्धव्यस्त हुए भरत और बाहुबलि

जब भरत और बाहुबलि : परमात्मा आदिनाथ के दोनों संसारी पुत्र युद्धव्यस्त हुए तब दोनों पक्षों में होनेवाले लाखों लोग और हजारों पशुओं के घोर संहार की कल्पना करके स्वर्गलोक के देव और देवराज भी काँप ऊठे।

उन्होंने मध्यस्थता करके दोनों को यह समझाया कि इस प्रकार रक्तपात करके शक्ति का निर्णय करने से अच्छा तो रक्तमुक्त मुष्टियुद्धआदि करके जय-पराजय का निर्णय क्यों न किया जाये?

अंततः तो ये दोनों परमात्मा आदिनाथ के पुत्र थे ; अतः ऐसे अहिंसक युद्धके प्रस्ताव को उन्होंने स्वीकार कर लिया।

और कुछ क्षण के लिये दो दिल धडकना भी बंद कर दे ऐसे पांच मुष्टियुद्धआदि देवराज ने सुनिश्चित कर दिये थे – ये मुष्टियुद्धहुए। सारे युद्धों में अग्रज भरत पराजित हुए। अतः वह बहुत क्रोधित हुआ और पूर्व निश्चित सुदर्शनचक्र का छठा युद्धशुरू कर दिया। उसने अपने सगे छोटेभाई पर सुदर्शनचक्र छोडा लेकिन नियमानुसार सगोत्र होने के कारण छोटे भाई पर न चलकर उसकी प्रदक्षिणा करके वापस लौट आया।

ऐसे अघोर अन्याय करनेवाले भरत पर बाहुबलि अति रुष्ट हुआ। मुष्ठी ऊठाये वह दौडा। भरत को बाथ में लेकर एक ही मुष्टि प्रहार से उसका माथा फोडने के लिये मुठी को ऊपर ऊठाया!

और उस समय उसके मन में विचार आया कि 'अरे ! पिता की अनुपस्थिति में बडाभाई तो पिता तुल्य कहलाता है। उसकी हत्या कर देने से इतिहास के पृष्ठ पर पिता आदिनाथ का नाम,उनके दोनों पुत्रों के खूनखराबे से कलंकित होगा। ना...ऐसा तो करना ही नही है।'

औत तुरंत ऊपर ऊठायी हुई मुष्ठी अपने ही माथे पर मारकर पांच मुष्ठी में अपने केशों का लोच करके दीक्षा की राह को पकड लिया !

भरत मुनि बाहुबलि के चरणों में पडकर रोने लगा।

22. कर्म का इन्साफ अटल है

वह सेशन्स जज थे। रोज नदी तट पर शौचकर्म के लिए टहलते हुए जाते थे।

एक दिन उन्होंने शौचक्रिया के दरमियान देखा कि एक व्यक्ति ने खंजर से दूसरे व्यक्ति की हत्या की है। खूनी भाग खडा हुआ। जजसाहब ने खूनी को अपनी नजरों से देखा था।

इस खून से सम्बंधित मुकदमा उनके पास ही आया पर आरोपी को नही पकड पाने के कारण पुकिस ने किसी फर्जी आदमी को आरोपी के रूप में हाजिर कर दिया। जज ने उसके मुँह की ओर देखते ही यह तय कर लिया था कि पुलिस ने अपनी आबरु बचाने के चक्कर में किसी फर्जी आदमी को मार-पीट,डरा-धमकाकर खूनी के रूप में गुनाह कुबूल करवाकर कठघरे में खडा कर दिया है।

ऊपर से वकील भी ऐसा निकला कि उसने अपना सारे बुद्धिकौशल का उपयोग करके उस व्यक्ति को खूनी के रूप में साबित कर दिया !

जज तो दंग रह गये। आंखें कहती हैं कि वह खूनी नही है। कानून कहता है कि वह खूनी है।

निर्दोष व्यक्ति के नाम जजमेंट लिखते हुए जज भी त्रस्त हो गये पर करें भी तो क्या !

पर वह धर्मात्मा थे। वह जानते थे कि 'मनुष्य से भूल होती है पर कर्मसत्ता का कम्पुटर तो कभी भूल नही करता।"

वे उस आरोपी को चैम्बर में ले गये। सत्य हकीकत बयाँ करने के लिए कहने पर वह रोने लगा। उसने अपने पूर्णतया निर्दोष होने तथा पुलिस दमन की बात कही। उस वक्त जज ने उसे पूछा कि 'इससे पूर्व क्या तुमने किसी की हत्या की है ?"

आरोपी ने कहा कि 'हाँ दो खून किये हैं परंतु हुशियार वकील की मदद से मैं दोनों बार निर्दोष साबित हुआ। इस बार मैंने खून किया नही है फिरभी फांसी की सजा मिली है।'

यह सुनकर जज के दिल को बडी शान्ति मिली। उन्होंने उस आरोपी से कहा :'तुम्हारे उन दो खून के लिये ही यह फांसी की सजा तुम्हें तुम्हारे कर्म ने दी है। मुझे कर्मसत्ता के इन्साफ की अटलता के प्रति शंका हुई थी। वह अब निर्मूल हो गई है।

23. अब हमारा धर्मपंथ मजबूत होगा

किसी और जगह के अभाव वश ।राजमार्ग की किसी दुकान में ही उस धर्मपंथ के साधुओं ने रात्रि-निवास किया था।

रात्रि के ग्यारह बजे उसी रोड पर दुकान के ठीक सामने भवाई मण्डली (नौटंकीवाले) आयी। बहुत शोर होने के कारण साधुओं की नींद उचट गई, वे नींद से जग गये।

सुबह चार बजे तक उस मण्डली ने अपना कार्यक्रम चलाया।

कार्यक्रम अति रसिक होने के कारण सैकडों लोगों की भीड जमा हुई थी।

गीत अद्‌भुत थे !

प्रत्येक का अभिनय भी अद्‌भुत था !

नाटक की कथावस्तु भी अद्‌भुत थी !

छोटे –बडे सारे ; अरे लंबी जिंदगी जी चुके बुढे-बूढियाँ भी इस कार्यक्रम में तन्मय हो गये थे। वाजिंत्र आदि की भारी आवाज के कारण दुकान में रहे सभी साधुओं को घंटों बैठे रहना पडा।

उन साधुओं में एक दस वर्षीय बाल साधू थे। उन्होंने जग जाने के बाद एक ही जगह पर पद्मासन मुद्रा में बैठ गये। उन्होंने नासिका के अग्र भाग पर नजर स्थिर की।

कार्यक्रम चार घण्टे चला तब तक वह बालमुनि उसी अवस्था में तनिक भी हिले डूले बिना परमात्म ध्यान में लीन हो गये। उन्होंने एक सैकण्ड के लिये भी उस कार्यक्रम को आँखों से देखा नही और कानों से सुना नही। सैंकडों प्रेक्षकों में वही धर्मसंघ का एक परिपक्व प्रेक्षक था। वह कार्यक्रम को देखने के लिये ही आया हुआ था पर अचानक उसकी नजर शुरूआत में उस बालमुनि की ओर गई।

वह उनकी ओर बार बार देखने लगा। उनकी ऐसी ही अनुपम ध्यानावस्था की लीनता को देख वह बोल पडा :'हमारे धर्मसंघ में यदि ऐसे बाल मुनि बसते हैं तो निश्चय ही यह धर्मसंघ अब पुख्ता होगा !'

24. अटल ऐसी मौत से क्या डरना?

नगर था।

वहाँ एक अद्‌भुत मनोवृत्तिवाला तत्वचिंतक रहता था।

नगर में वह सुख्यात था।

नगर के राजा का वह बहुत प्रिय था।

उसकी पत्नी का अवसान हो गया। सारा नगर शोकसंतप्त हो गया।

राजा को यह समाचार प्राप्त होते ही उसे आश्वस्त करने के लिए रूबरू जाने का विचार किया।

कैसे और किन गम्भीर शब्दों में तत्वचिंतक को आश्वासन दिया जाये ? राजा ने एतद् सम्बंधित घंटों पर्यंत काटकूट कर एक लेख तैयार किया।

काले रंग के वस्त्र धारण किये और काले घोडे की बग्धी में बैठकर राजा तत्वचिंतक के घर गया। मध्याह्नवेला थी।

तत्वचिंतक के घर जाकर उसके कमरे में राजा ने जिस द्दश्य को देखा, इससे राजा तो दंग रह गया।

तत्वचिंतक हाथ में खंजडी लिये बजा रहा था और नाचते हुए कोई गीत गा रहा था। उसके मुख पर प्रसन्नता दिखतीी थी।

राजा तो यह देख असमंजस में पड गया। वह तो काले वस्त्र धारणकर शोकसंदेश तैयार करके आया था और यहाँ तो खुशियाँ नजर आ रही थी।

राजा की समझ में यह बात नही बैठी कि जिसकी पत्नी आज सुबह ही परलोक चली गई है ,वह पुरुष दोपहर के समय में खंजडी बजाता हुआ नाच कैसे सकता है ?

राजा ने जब चिंतक से यह सवाल किया तो चिंतक ने कहा, 'मेरी जिस पत्नी ने मुझे बहुत प्यार दिया है, जिसने मेरी खूब सेवा की है ,हम दोनों हमेशा मिलजूलकर रहे हैं ,उसकी बिदाई की घडी आयी

तब उसे बिदा करते हुए मैं कैसे शोक कर सकता हूँ? ऐसी स्त्री को तो मुझे अत्यंत आनंद के साथ बिदा करना चाहिए जिससे कि उसे भी आनंद का अनुभव हो !'

तत्वचिंतक के इन शब्दों से राजा के दिल पर बहुत असर हुआ।

'अरे ! किसी वाहन का अकस्मात अनिश्चित है। वह किसी जीव के लिये निश्चित नही है। अतः ऐसा हो तो आश्चर्यानुभव होगा पर जो मौत प्रत्येक जीव के लिए सर्वथा सुनिश्चित है,उसके आगमन पर आश्चर्य किस बात का ? शोक भी किस लिए ?

25. बादशाह कौन?

कोई अमरिकी राष्ट्रप्रमुख स्वामी रामतीर्थ से मिलने गये। वे रामतीर्थ के नीडर वक्तव्यों से बहुत प्रभावित हुए थे।

काफी बातचीत होने के बाद राष्ट्रप्रमुख ने रामतीर्थ से पूछा कि 'आप खुद को बादशाह क्यों मानते हैं ? मेरे जैसों को बादशाह कहा जाता हैं, जिसका समग्र अमरिका पर प्रभाव है।'

रामतीर्थ ने कहा ,'आपका गणित ठीक नही है। आपकी यह बात बिलकुल सही है कि मेरे पास कुछ नही है पर एक बात आपके दिमाग से निकल गई है कि जिसके पास सारा विश्व हो, वही सही मायने में सच्चा बादशाह कहलाता है। आपके पास तो मात्र अमरिका है परंतु इसका अर्थ तो यह हुआ कि आपका बश चले तो आप अभी रशिया,आफ्रिका,चीन जैसे देशों पर भी प्रभुत्व हासिल कर लें। 'यदि यह बात ठीक हो तो आप बादशाह कैसे कहे जा सकते हैं ? जिसका अभी काफी कुछ अपना नही है,पराया है,जो उसे पाना है वह तो भिखारी कहलाता है।

'मेरा तो सारा संसार है। अतः मेरे लिये कुछ भी पराया नही है। जो चीज मेरी न हो ,उसे पाने की मुझे आवश्यकता रहेगी पर जब सारा संसार मेरा है ,उस पर मैं अपना आधिपत्य मानता हूँ। अतः मुझे कुछ संजोकर रखने या प्राप्त करना नही होता।

'जो गैर है ,उसे पाना होता है,मेरे लिये तो सबकुछ मेरा है।

इसीलिए असली बादशाह तो मैं हूँ। आप नही या और कोई भी बादशाह नही।"

स्वामीजी की बात राष्ट्रप्रमुख की समझ में आ गई।

26. ज्ञान रहित अंधकार

एक गँवई था।

वह गाम्य जीवन जी रहा था। वह गोबर का उपयोग जलावन के रूप में करता था। कोपरैल के दिये जलाता था।

वह इतना ही समझता था कि जो प्रकाश देता है वह दीपक कहलाता है। उसे बुझाना हो तब फूंक मारकर बुझा सकते हैं। एकदा उसे पहलीबार शहर जाना हुआ। वह रात के समय शहर में पहुँचा। वह वहाँ किसी मित्र के यहाँ रात्रिनिवास करने के लिए रूक गया।

सोने का वक्त हुआ तब जिस इलेक्ट्रीक ग्लोब से प्रकाश आ रहा था। उसे दूर करने के लिए वह ग्लोब के पास जाकर फूंक मारने लगा। उसकी समझ वही थी कि प्रकाश ही दीया है। उसे बुझाने के लिए जोर से फूंक मारनी चाहिये।

पर अफसोस ! उसका यह चिरस्थायी अनुभव आज काम नही आया। ग्लोब पर फूंक मार मारकर वह थक गया पर प्रकाश हटा नही।

इस बात से उसे बडा आश्चर्य हुआ। वह बहुत असमंजस में था।

आखिरकार उसने अपने यजमान को जगाया। उससे कहा कि उसे प्रकाश की स्थिति में नीद नही आ रही। अनेक बार फूंकें मारने पर भी वह दीया बुझ नही रहा।

यजमान ने सारी बात समझ ली। ऊठकर उसने लाइट की स्वीच को उंगली से दबाया कि तुरंत

अंधेरा छा गया। जहाँ प्रकाश है वहाँ दीयों का प्रकाश नही होता। उसे विलिन करने के लिए फूंक मात्र एक ही उपाय नही है। जैसी गेंद वैसा प्रहार। घर में सयानापन नही आता तब तक ऐसी अनेक अनसुलझी समस्याएँ सुलझती नही हैं।

27. कर्मराज की दण्ड देने की अनोखी रीति

किसी एक ब्राह्मण ने लगातार भौंक रहे कुत्ते पर गुस्से में आकर पत्थर मारा। उस कुत्ते को पत्थर लगने से उसका एक पैर टूट गया।

कहा जाता है कि उस कुत्ते ने रामचंद्रजी के समक्ष यह फरियाद की। रामचंद्रजी ने उस ब्राह्मण को बुलाया। उसने अपना गुनाह कबूल कर लिया। रामचंद्रजी ने कुत्ते से कहा कि उस ब्राह्मण को तुम जो दण्ड देना चाहो, दे सकते हो। कुत्ते ने कहा :" तो मैं यह दण्ड देता हूँ कि यह ब्राह्मण जिसने मेरा पाँव तोड़ा है उसे किसी मंदिर का माहन्त बना दिया जाये।"

यह सजा सुनकर न्यायसभा में बैठे सभी सदस्य चकित रह गये। वे कह उठे-"यह तो सजा हुई या मजा हुई।" उन्होंने कुत्ते से ऐसी विचित्र सजा करने का कारण पूछा।

कुत्ते ने कहा,"पूर्वजन्म में मैं मंदिर का पूजारी था। दीपक में घी भरते समय एक दिन मेरे नख में थोड़ा सा घी रह गया। खाते वक्त वह घी मेरे पेट में गया। इस प्रकार देव का घी खाने के पापवश मुझे कुत्ते का अवतार लेना पड़ा। अब यदि यह ब्राह्मण बड़े मन्दिर का बड़ा महन्त होगा तो देव का कितना निर्माल्य आदि खायेगा। ऐसा होगा तो वह उतना कर्मबंध करेगा कि उसे हर भव में कुत्ते, बिल्ली और सूअर आदि के अवतार लेने पड़ेंगे। इस प्रकार ऊपर ऊठाने वाली सजा तो उसे खूब नीचे पटकने की सजा हो जायेगी!"

अब सभाजनो को बात का मर्म समझ में आया।

28. हाय लेनेवाला कभी सुखी नहीं होता

वह अत्यंत धनिक सेठ था। उसके मकान की चौकियाँ इतनी बडी थी कि कई निराधार गरीब लोग रात के वक्त उन चौकियों पर सो जाते थे। उदार मन सेठ कभी भी उनके इस तरह सोने पर एतराज नही ऊठाते थे।

एक दिन घर में सोये हुए सेठ ने किसी व्यक्ति का करुण रुदन सुना। करुणार्द्र सेठ ने तुरंत उसे घर में बुलाया। उसने अपने घर की दारुण गरीबी की कथनी रोती हुई आँखों से बतायी। सेठ का हृदय तो मोम सा नर्म था। एकदम पीघल गया।

दूसरे दिन उस सेठ ने उस गरीब व्यक्ति के नाम से व्यापार किया। उसमें दोहजार रुपयों की कमाई हुई। पुनः वह रकम उसके नाम से लगाई और पांच हजार रुपयों की और कमाई हुई।

सेठ ने उस आदमी को पूरे सात हजार रुपये व्यापार करने के लिये दिये। सेठ ने अपनी एक खाली दुकान भी उसे कारोबार चलाने के लिए दी।

गरीब का भाग्य रंग लाया। कुछ ही बरसों में वह करोडपति हो गया। उसने भी उस सेठ जैसा ही बडा मकान बनवाया।

वक्त की कैसी बलिहारी कि सेठ का कारोबार बिगडता चला। एक समय तो ऐसा आया कि खाने के भी लाले पडने लग गये। वे उस नूतन सेठ के बंगले पर गये। सेठ को आशा थी कि वह अवश्य मदद करेगा। वह कृतघ्न तो होगा ही नही।

पर अफसोस ! सचमुच वह कृतघ्न निकला। आये हुए सेठ को पानी तक नही पिलाया और धक्के देकर बंगले से बाहर निकाल दिया। सेठ तो वापस लौट गये।

इस तरफ नूतन सेठ छह महिने में हर तरह से बरबाद हो गये। आखिरकार विषपान करके जीवन का अंत कर दिया।

"तुलसी हाय गरीब की ..."

29. भारत इसी प्रकार ही बरबाद हुआ होगा ना?

एक राजा था । अनेक गाँवों का वह रजवाड़ा था ।

राजा के पुत्र के विवाह के अवसर पर अपनी हुकूमत के गाँवों के चचेरे भाइयों को निमंत्रित किया । चार दिन ठहरने के लिए बताया गया ।

चारों दिन इतना भारी जलसा हुआ कि जिसका वर्णन कर पाना मुश्किल है । दिन-रात नित नवीन कार्यक्रम हो रहे थे ।

मानों धरती पर स्वर्ग उतर आया हो । उन पर पूरा नशा छा गया था ।

ऐसे में यकायक चौथे दिन एक गाँव के चचेरों को खबर मिली कि उनके गाँव में भारी आगजनी हुई है । अतः फटाफट सब वहाँ पहुँच जाये ।"

पर ये तो चचेरे ! ऐसा जलसा उनसे छूटे तो कैसे ? उन्होंने बैठक बुलाकर तय कर दिया कि "हम

में से कोई गाँव जायेगा नही । आग लगी तो भले ही लगी गाँव तो अपना ही जल रहा है ना ! भले ही जलता रहे । ऐसे जलसे थोड़े ही इतनी सी बात के लिये छोड़े जा सकते हैं ?"

और ...उस तरफ सारा गाँव जल गया । अनेक लोग जल मरे तो कई लोग बहुत बुरी तरह से जल गये ।

जब चचेरे घर पहुँचे तब उन्होंने गाँव की भारी बरबादी को देखा और वे आघात से चीख पडे । जान-हानि और पारावार नुकसानी के बारे में जानकर वे मूढ़ हो गये ।

पर अब क्या किया जाये ?

अपनी बेदरकारी की फसल उन्हें ही पीड़ित कर रही थी ।

30. शर पर कफन बांधकर ही काम करें

किसी एक गाँव में एक बुनकर रहता था। उसके दो पत्नियाँ थीं। एक का नाम हाडी और दूसरी का नाम कुहाडी था।

किसी जैन गुरू के सत्संग से बुनकर ने "गंठसी " नामक व्रत धारण किया था। इस व्रत में कपडे के छोर की गांठ खोलने के बाद ही कुछ भी खाया–पीया जा सकता है और खा-पी लेने के बाद गांठ लगा देनी होती है।

एकबार हुआ ऐसा कि बुनकर ने गांठ खोलने का प्रयत्न किया पर गांठ ऐसी पड़ गई थी कि वह खुली ही नही और योगानुयोग बुनकर की मौत हो गई।

इससे उसकी पत्नियाँ अपने पति को ऐसा व्रत देने वाले सुव्रत नामक आचार्य पर बहुत क्रोधित हुई।

उन्होंने राजा से शिकायत की। राजा ने उस आचार्य को कारागार में डाल दिया।

इस तरफ मरा हुआ बुनकर देव हुआ था। अपने उपकारी आचार्य पर आयी तकलीफ के बारे में उसने अपने ज्ञानबल से जाना।

वह तुरंत धरती पर आया समग्र नगर को चूर-चूर कर दे ऐसी बड़ी पाषाणी शीला हाथ में लेकर राजा को ललकारा। राजा बहुत डर गया था। उसने देव तथा आचार्य सुव्रत से अपनी भूल की माफी मांगी। आचार्य श्री को कारागार से मुक्त किया।

इससे "बुनकर देवे शांत होकर अपने धर्मगुरु सुव्रत आचार्य की वंदना करके स्वस्थान प्रस्थान कर गया।

कब क्या। हो जाये ! उसकी तो कल्पना भी नही की जा सकती। ऐसे में तो मौत को मुट्ठी में लेकर अच्छे कामों में प्रवृत्त हो जाना चाहिये।

31. करूणा का जवाब? कृतज्ञता से

प्रजावत्सल राजा सोम शत्रु राजा द्वारा पराजित हो गया। उसे पकड़ा जाये उससे पहले तो वह नगर छोड़कर गुम हो गया। शत्रु राजा ने सोम को जिंदा या मृत पकडकर लाने वाले को एक लाख सोनामुहरों का पुरस्कार घोषित किया।

परंतु राजा सोम इतना प्रजावत्सल था कि प्रजा को मालूम हो तब भी उसे कदापि सौंपे नही। एक बार राजा सोम जंगल में गुप्तभेष में भटक रहा था। वह एक कुटिया की ओर जा रहा था कि उसने एक ग्वाला और ग्वालिन को इस प्रकार बात करते हुए सुना।

"अरे ! कितने खराब दिन आ गये हैं ! इस नये राजा ने आते ही प्रजा पर कितना जोर-जुल्म शुरु कर दिया है। वह पुराना राजा बहुत अच्छा था। उसकी भलाई के बारे में तो क्या कहें ?उसके समय में हमारे लिये रोजी-रोटी का सवाल कभी भी नही आया था। आज तो भूखे ही सोने का समय आ गया है।"

ये शब्द सुनकर सोम राजा की आँखें भर आयी। उसने तुरंत उस कुटीया में प्रवेश किया और कहा "रोटी की तनिक भी चिन्ता न करें। मैं सोम राजा हूँ। मेरे लिये एक लाख का पुरस्कार घोषित हुआ है। मुझे सौंपकर उस राजा से वह रकम प्राप्त कर लो और जीवनभर मौज करो।"

ग्वाले ने कहा ,"अरेरे, राजन् ! यह आप क्या कह रहे हैं ? ऐसा अघोर पाप तो हम पापी पेट के लिए कभी नही करेंगे। ऐसा तो कदापि नही हो सकेगा।"

राजन् ! लगता है आपने कुछ खाया पिया नही है। आइए हम साथ बैठकर रोटी खाते हैं। "घर में से इतना सामान तो मिल ही जायेगा।"

राजा सोम की आँखें छलक उठी।

32. कितना क्रूर अकबर!

कैसी प्रचण्ड चारित्र की शुद्धि होगी पूज्यपाद आचार्यश्री हीरसूरीश्वरजी में, कि उन्होंने अति क्रूर और घातकी बादशाह अकबर को सर्वथा अहिंसक बना दिया ! एक विकराल बाघ को अहिंसा के पिंजडे में बंद कर दिया ! पढ़िये अकबर की क्रूरता के विषय में.....

१.एक छोटी सी भूल के कारण बारह वर्षीय लडके (नौकर) को महल की खिड़की से बाहर फेंक दिया था।

उस लड़के की मौत खोपड़ी फट जाने के कारण हो गई थी।

२.अपनी खुशामद नही करने वाले कवि गंग को हाथी के पैरों तले कुचलवा दिया था।

३.चितौड़ का किला जितने जा रहे अकबर ने रास्ते में आने वाली सैकड़ो स्त्रियों का कत्ल करवा दिया था। इतने सारे ब्राह्मणों का वध करवा दिया था कि उनकी जनेऊ के ढ़ेर का वजन साढे चौहतर मण हुआ था।

४.लाहौर के पास के एक जंगल में एक लाख पशुओं को इकट्ठा कर उनका निर्दय कत्ल करवाकर उस कत्ल को देखने का आनंद मनाया था।

५.१६२० के वर्ष में गोंडवाणा की रानी दुर्गावती के साथ जो भीषण युद्ध हुआ, उसमें अकबर ने अमर्यादित क्रूरतापूर्ण आचरण किया था।

६.रणथंभोर, कलिंजर, गुजरात,बिहार और बंगाल पर जीत पाने के लिये उसने लाखों लोगों का कत्ल करवाया था।

७.बाघ, शेर आदि का शिकार करने के लिये जब वह निकलता था तब उसके पास जो सामग्री रहती थी, वह इस प्रकार थी :-पांच हजार भैंसे,बीस हजार कुत्ते,बीस हजार वाघरी (एक कौम विशेष के लोग, जिन्हें अब देवीपुत्र कहा जाता है।) ,पांचसौ चीते, आठसौ रखैलें और हजारों शिकरे-बाज।

अकबर की कामवासना भी अतिशय तीव्र थी। स्त्रियों के स्नानादि वाले मनोरंजन में वह स्त्री-भेष में उसमें घूस जाता था।

33. कब क्या होगा? क्या खबर?

सोलह वर्षीय आल्बर्ट आईन्स्टाईन अर्थात् म्युनिक के स्कूल का अत्यंत उपद्रवी और मंदबुद्धि विद्यार्थी ! इन दो कारणों से वह अन्य विद्यार्थियों को भी न बिगाड़े इस लिये स्कूल के प्रिन्सिपल ने उसे स्कूल से डिसमिस कर दिया था।

तीन वर्ष की अवस्था तक तो वह कुछ बोल भी नही सकता था। बालक के रूप में वह "ओरीस्टीक चाईल्ड "माना जाता था। वह अत्यंत मूर्ख समझा जाता था और एकदम क्या हो गया?...कि आईन्स्टाईन का यह स्वरूप आमूलचूल बदल गया।

इस्वीसन १९०५ के वर्ष में मात्र छब्बीस वर्ष की अवस्था में उसने समस्त विश्व में खलबली पैदा कर दी। उस एक ही वर्ष में उसने तीन विराट सिद्धियाँ हासिल की। ये सारी सिद्धियाँ नोबेल प्राईज के योग्य थीं।

इतने बड़े वैज्ञानिक को ईश्वर के प्रति गहरी श्रद्धा थी। वह कहता था कि, "मैं यह नही मान सकता कि ईश्वर ब्रह्माण्ड के साथ जुआ खेलने बैठे हैं।"

जब उसे गणित के किसी प्रश्न में परेशानी अनुभव होती थी तब वह बड़ा कागज लेकर उसके बीच में एक वर्तुल खींचकर उसमें अंग्रेजी अक्षर "G' लिखता था। यह 'ह घेंदृ का था। उसका दो मिनट के लिये ध्यान करते ही उसकी मुश्किल आसान हो जाती थी।

E =MC2 की अणु के समीकरण के आविष्कार से अणुबम बना और अमेरिका ने ऐसे दो बम जापान के दो शहरों पर गिराकर लाखों लोगों का संहार किया तब उस बम की थियरी के प्रणेता के रूप में आल्बर्ट को गहरा सदमा पहुँचा था।

उसने कहा था कि "यदि पुनर्जन्म जैसा कुछ हो तो मैं प्लम्बर बनना पसंद करूँगा।

34. पुण्य जब खत्म हो जाता है तब....

गोंडल नरेश बहुत प्रजावत्सल थे। प्रजा का दुःख देखकर उनकी आँखें आर्द्र हो जाती थी पर उनके जीवन के अंतिम महिने अति भयानक गुजरे।

पता नही कैसे आकस्मिक ही उनका पुण्य समाप्त हो गया। उन्होंने पहली पत्नी से विवाह विच्छेद कर लिया था।

दूसरी यूरोपियन पत्नी थी।वह भी कुछ ही समय में परलोक सिधार गई। इस प्रकार नरेश का जीवन पारिवारिक दृष्टि से शून्य था कि उनके जीवन में वृद्धावस्था ने दस्तक दी और प्रचण्ड पुण्य के उदय रूपी सूर्य का आकस्मिक ही अस्त हो गया।

नरेश से मिलने के लिये कोई जाता-आता नही था। नरेश को वह एकाकीपन (निस्संगता) अखरने लगा। एक बार एक व्यक्ति उनसे मिलने के लिये गया तब नरेश के आसपास जमी गंदगी को देखकर तथा कुत्ते-बिल्लियों को बैठे देखकर उन्हें बडा आश्चर्य हुआ।

समग्र नगर में सफाई की बहुत सूक्ष्मतापूर्वक दरकार करनेवाले नरेश का राजमहल गंदगी से भर गया।

जब उस व्यक्ति को इस स्थिति का पता चला तब एक हफ्ते बाद पुनः नरेश के पास गये। उसने खाने के लिये उनको कुछ संतरे दिये। संतरे खाते हुए उनकी आँखों से आँसू बह चले। उस व्यक्ति ने उन आँसुओं में काफी कुछ पढ लिया।

दूसरे दिन पुनः वह व्यक्ति नरेश से मिलने के लिए गये तब समाचार मिले कि रात में नरेश का देहांत हो गया है।

तत्पश्चात् पास की झोंपड़पट्टी के लोगों ने उनके महल को जितना लूट सकते थे लूट लिया।

35. एक दिन तो मरना ही है

वड़ोदरा स्टेट के सयाजीराव गायकवाड़।

वे मृत्यु को लेकर बहुत चिन्तित रहते थे। किसी धूर्त से उनकी मूलाकात हो गई। उसने कहा कि यदि फलां ईन्जेक्शन प्रतिदिन एक लिया जाये तो बुढ़ापा नही आता और मौत भी दूर रहे।

ईन्जेक्शन चालू हो गया। उस जमाने में एक ईन्जेक्शन की कीमत एक सौ पच्चीस रूपया थी। लेकिन महाराज इस चिन्ता से मुक्त थे।

फिर भी मौत ने तो दस्तक दे ही दी। मौत तो कभी कभी बुढ़ापे को भी एक तरफ रखकर आ सकती है। उसका कोई ठिकाना नही।

जीवनके आखिरी महिने बहुत खराब गुजरे। उनकी देह से असह्य बदबू निकलने लगी। डॉक्टर भी उनके पास जा नही पाते थे। उनकी पत्नी चीमनाबाई से डॉक्टरों ने कहा कि, "आप अपने पति से आखिरी बार मिल लिजिए।

अब उनके पास ज्यादा समय नही है। "परंतु शरीर से निकलने वाली असह्य दुर्गंध के कारण चीमनाबाई उस कमरे में जाने में बिलकुल असमर्थ थीं।

और इस प्रकार निस्संगता में –उसी की यातना में गायकवाड़ ने दम तोड़ दिया।

वह उक्ति सच है ना कि चाहे जंगल में भाग जाओ, आकाश में दौड़ जाओ या तहखाने में छिप जाओ, मृत्युंजय मंत्र का पाठ करो या यमराज को अपना जिगरी दोस्त बना लो, चाहे कैसी भी जड़ी-बुटी खाओ या चाहे कैसे भी तांत्रिक प्रयोग करवाओ तथापि एक दिन तो हर व्यक्ति को मरना ही है।

36. हे शराब! तुम्हारे शिकार में

एक जैन परिवार था । उस परिवार का एकमात्र पुत्र था वह युवक । बहुत लाड-प्यार भरी परवरिश के कारण उसमें गलत संस्कार आ गये थे । वह उसके पिता की आज्ञा में भी नही था । अब माता-पिता को अपनी भूल का बोध हुआ ।

यह युवक शराब का व्यसनी हो गया था । लगभग चौबीसों घण्टे वह शराब के नशे में चूर रहने लगा था । वह इस लत की वजह से पत्नी को भी तंग करता रहता था ।

एक बार एक जैन साधु उसके घर वहोरने के लिये गये । वह युवक उस वक्त शराब के नशे में चूर था ।

उसने अंदर से दरवाजा बंद करके साधु से मिलकर कहा : "इसे आप समझाइए, वह मेरी बात नही मान रही ।

मैं उसे किसी भी मूल्य पर शराब पिलाना चाहता हूँ ।"

उस समय वह युवा पत्नी ऐसी अशोभनीय बातों से उत्तेजित हो गई और पति को कोसते हुए कहने लगी कि, "साधु महाराज से कहीं ऐसी बात की जाती है ? थोडा-सा तो विवेक रखिए ।"

इन शब्दों से भडके पति ने रसोई में जाकर सांड़सी ऊठायी और पत्नी के माथे में दे मारी । वह इस प्रहार से लहूलुहान हो गई । डॉक्टर के पास जाकर ईलाज करवाया ।

ऐसी अवांछित स्थिति में साधु महाराज ने तो दरवाजा खोलकर अपना रास्ता नाप लिया।

पति के ऐसे रोजमर्रा के आतंक से त्रस्त पत्नी ने लाईलाज होकर एक प्लान बनाया । उसने अपनी सगी बहन को बुलाया और मध्यरात्रि के समय दोनों बहनों ने मिलकर नशे में धूत्त पति का गला दबा दिया ।

कुछ ही क्षणों में पति ने अपना दम तोड़ दिया ।

37. मौत के क्षणों में भी सिनेमा त्याग से ईंकार

माता पिता से लड़-झगड़कर अलबत्ता पत्नी की प्रेरणा से ही युवा अनिमेष अलग हुआ। अपने माँ-बाप से जितना धन एँठा जा सकता था छीन कर ले लिया। यह दंपत्ति नये फ्लेट में रहने के लिए चले गये।

इस तरफ माता-पिता एकाकी जीवन से खूब परेशान हुए। साथ रहने के लिए पुत्र और पुत्रवधु को बहुत समझाया पर सारे प्रयत्न व्यर्थ हुए। और सचमुच अनिमेष को माता पिता की बद्दुआ लग गई।

अभी तो मुश्किल से छह महिने गुजरे थे कि उसे घुटने में दर्द होने लगा। निदान यह आया कि उसे अस्थियों का कैंसर लग गया था। पत्नी ने तो दिन-रात बिना थके बहुत सेवा की परंतु वह अकेली क्या। कर सकती थी ?

उसके माता-पिता को यह खबर मिली। माता-पिता खुद चलकर अनिमेष के घर गये और उसे तथा बहू को अपने घर ले गये।

सबने मिलकर अनिमेष की बिना दिन देखे न रात बहुत सेवा की। कहा गया है कि जिसकी टूटी उसकी बूटी नही। अनिमेष को मौत पुकार रही थी। सबको इस बात की खबर हो गई थी।

एक दिन उसके पिता उसकी आखिरी निर्यामणा के लिए एक साधु को घर ले आये। साधु महाराज ने उसे अनेक प्रतिज्ञाएँ दी, बहुत कुछ करवाया परंतु उसमें योगानुयोग सिनेमा की प्रतिज्ञा लेने की बात आई तो अनिमेष एकदम डर गया। उसने साफ-साफ कह दिया कि यह प्रतिज्ञा तो मैं ले ही नही सकता।"

और दूसरे ही दिन वह मौत का शिकार हो गया।

38. कोई संतान भी दे दे

वह थे महान शासनप्रभावक, तपोनिधि आचार्यदेव श्रीमद् भुवनभानुसूरीश्वरजी महाराजा साहब।

वर्धमान तप की एक सौ आठवीं ओळी के उग्र तप का पारणा लालबाघ (भूलेश्वर) मुम्बई के उपाश्रय में किया।

ऐसे पावन प्रसंग पर जैन-संघ अतिव हर्षित था। उस दिन व्याख्यान में सारे श्रद्धालु इस तपोनिधि महात्मा के वरद हस्त से आशीर्वाद पाने के लिए कतारबद्ध हुए। सबके हाथ में कुछ न कुछ था।

वहोराने के लिए पातरे की जोड़ी, तरपणी-चेतना, कामली, वस्त्र का थान आदि....

पर उस कतार में एक गरीब सी दिखनेवाली महिला भी खड़ी थी। उसके हाथ में वहोराने योग्य कुछ भी नही था। मात्र दो वर्ष का बच्चा उठाये वह कतार में खड़ी थी।

उनका भी नम्बर आ गया।

वासक्षेप डलवाने से पहले उन्होंने कहा :"हे तपोनिधि गुरूदेव! इन सब बड़े लोगों के जैसा मेरे पास आपको वहोराने के लिए कुछ भी नही है। मैं तो अति साधारण औरत हूँ। पर मेरे पास एक चीज अवश्य है।

वह है मेरा दो वर्षीय प्रिय बेटा। आप उसका स्वीकार कीजिए।"

यह शब्द सुनकर वहाँ उपस्थित हजारों जैनों की आँखों से आँसू बहने लगे।

पूज्यश्रीने उसका स्वीकार करते हुए उसे आठ वर्ष की अवस्था तक धार्मिक शिक्षा देने के लिए उसकी माता को बच्चा लौटाया।

उस वक्त सब की आँखों में आँसू थे। आँसू कह रहे थे, "आज भी जैनशासन कैसा जयवंत है।"

39. मुस्लिम में भी दया!

अहमदनगर जिले का यह गाँव- रुईबहार।

उस गाँव में शेख महंद नामक एक लड़का था। सोलह वर्ष की अवस्था में तो उसने सम्पूर्ण कुरान मुखपाठ कर लिया था। वह लोगों को कुरान की अलग अलग आयतों पर घंटो भर तकरीर सुनाता था।

एक बार उसके पिता ने बकरी ईद के दिन बकरे की कुरबानी करने के लिये कहा। उसके लिये उन्होंने एक तंदुरस्त बकरा तथा छुरा उसे दिया। शेख उस छुरे की धार बनाने के लिये बैठा। उस वक्त वह बकरा भी वहाँ खड़ा था। शेख की नजर उसकी तरफ बार बार जाने लगी।

बकरे की आँख से टपकती करुणा को देख उस का दिल पसीज गया। उन आँखों से बह रही निर्दोषिता के भाव के आगे वह हार गया।

उसने बकरे को मुक्त करके जंगल में छोड़ दिया। बाद में उसने अपनी उंगली का एक पोर उसी छुरे से काट डाला। तब उसके मन में विचार आया कि बकरे का माथा काट देने से उसे कितनी वेदना होती ?

उसके पिता को इस बात की खबर हुई तो वे बहुत व्याकुल हो गये। बकरे को हलाल करने की इस्लाम धर्म की आज्ञा है। उसका पालन अपना बेटा न करे –यह तो असह्य बात थी।

पिता ने शेख को बहुत समझाया पर उसमें उसे सफलता नही मिली। शेख ने बताया कि -"जिस धर्म में ऐसी क्रूर हिंसा की बात हो उस धर्म को मैं छोड रहा हूँ।"

पिता ने गुस्से में आकर कहा कि "तब तो तुम्हें मेरा घर भी छोड देना होगा।"बाद में उसने शेख को जूतों से बहुत मारा-पीटा और लातें मारकर घर से निकाल दिया।

उस समय शेख के मुख पर प्रसन्नता खिली हुई थी।

40. रमण महर्षि की बोध की रीति।

एक बार रमण महर्षि आश्रमवासियों के भोजन करने की पत्तलें तैयार कर रहे थे। इस प्रकार उन्हें छोटे से छोटा काम करने में भी बडा आनंद आता था।

पड़ोस के गाँव का एक व्यक्ति गृहकलह से बहुत त्रस्त हो गया था। वैसे तो वह बालकों को स्कूल में पढ़ानेवाला अध्यापक था परंतु गृहकलह के विषय में वह अपने मन से कोई समाधान खोज नही सका था।

आत्महत्या का अटल निर्णय करके उसने इस विषय पर महर्षि की सलाह लेने का विचार किया। वह महर्षि के पास गया।

पत्तलें बना रहे महर्षि की ओर वह कुछ देर ताकता रहा। बाद में उसने महर्षि से पूछा कि "ये पत्तलें अंततः तो फेंक ही दी जायेंगी ना ?"

महर्षि तो उसके आत्महत्या करने का इरादा पहले ही जान गये थे। अतः अपने मन में यह बात रखकर उन्होंने कहा : "हाँ, परंतु एकबार उपयोग कर लेने के बाद ये पत्तलें फेंकनी होती हैं। जब कि महाशय !

आपने तो अभी तक अपने जीवन का उपयोग किया ही नही है, कि तुमने इसे फेंक देने का विचार किया है ! यह तो तुम्हारे लिये बहुत गलत बात है !"

इन शब्दों ने अध्यापक के मन पर ऐसी चोट लगाई कि उसने आत्महत्या का विचार मुलतवी किया। इतना ही नही, पर अपनी सहिष्णुता को भी बहुत बढ़ा दिया। इससे गृहकलह खत्म हो गया। घर स्वर्ग हो गया।

41. बेटा! मोडर्न कैसे बनोगे?

अपने यहाँ मेहमान हुए एक जापानीज खरीददार को वेणीशंकरभाई "सन एंड सेंड "में पार्टी देने के लिये ले गये।

कुछ देर बाद एक जैन परिवार ने उस होटेल में प्रवेश किया। उस परिवार में पति, पत्नी और दस वर्षीय बेटा था।

ऐसे होटेल में जैन लोग आकर क्या। करते हैं ? यह जानने के लिये वेणीभाई ने अपने आँख-कान सतर्क कर दिये।

बेटे को टेबल पर रखे मैग्जीन पढ़ने के लिये देकर दोनों पति-पत्नी अलग अलग कमरे में चले गये। लगभग आधे घंटे बाद वे दोनों बाहर आये तब उनकी लाल आँखों पर से ऐसा लगता था कि उन्होंने खूब शराब पी रखी है। वेणीभाई तो उनके कुकर्मों को अनुमान से जानकर और शराब का नशा देखकर दंग रह गये।

बाहर आने के बाद उन्होंने बेटे के मुख के आगे व्हीस्की का ग्लास रखा। थोड़ा चखते ही बेटे ने थूक दिया। उसने कहा : "मम्मी ! मुझे यह नही पीना है। मुझे कड़ुआ लग रहा है !

हँसते हुए माँ ने उससे कहा "बेटा !

यह तो पीना ही पड़ेगा। शुरू शुरू में ठीक न लगे तो भी पीना पड़ेगा। बाद में तुझे राश आ जायेगा। यह तो व्हीस्की है, शराब है !"

ऐसा कहते हुए प्यार कर बेटे को शराब पीला दी । मम्मी के आखिरी शब्द थे, "देखो यदि तुम ऐसे शराब पीना नही सीखोगे तो बेटे तुम मोडर्न कैसे बनोगे ?"

कैसा दुषित हो गया है, यह समाज ! ऐसे सैकड़ो अनाचारों से !

समाज से धर्म का देशनिकाला हो गया है, उसका यही परिणाम होगा न ?

42. शिवाजी के वफादार सैनिक

बड़ी मुश्किल से शिवाजी को किसी मुगल सरदार से हुई भिडंत में विजय प्राप्त हुई ।

पकड़े गये सरदार से बातचीत चली । सरदार ने बताया कि "आपको हम पर विजय पाने में बहुत कष्ट हुआ है । उसकी वजह यह है कि आपके एक सैनिक ने हमें आपकी कुछ जानकारियाँ दी थी । मुझे तब बड़ा आश्चर्य हुआ था कि शिवाजी का सैनिक क्या इतना बेवफा हो सकता है ?

शिवाजी और उनके सैंकड़ो सैनिक मन ही मन क्रोधित हो गये ।

शिवाजी ने उस बेवफा सैनिक का नाम देने के लिए उस सिपाही से कहा तो उसने कहने से मना कर दिया ।

इससे सारे वफादार सैनिक चिंतित हो गये । उनको लगा कि "अब तो शिवाजी महाराज को हम सब पर शक होगा । ऐसी दशा में हम कैसे जी सकेंगे ?"

अंततः उन सारे सैनिकों ने पर्वत पर से घाटी में कूदकर जीवन का अंत कर देने का निर्णय किया।

क्रमशः एक के बाद एक वफादार सैनिक घाटी में कूदता गया । ऐसा करते करते सोलह सैनिकों ने अपने प्राणों की आहुति दे दी ।

उसके बाद सत्रहवा सैनिक भी घाटी में कूद गया । उसे कूदना पड़ा ।

तत्पश्चात् अठारहवा सैनिक जैसे ही कूदने गया कि उस सरदार ने उसे रोक दिया । उसने शिवाजी से कहा, "बस, बस । अब ज्यादा बलिदान नही देना । जो सत्रहवा सैनिक था वही बेवफा सैनिक था ।"

एक बेवफा का निर्णय करने के लिए सत्रह सैनिकों ने अपना जीवन बलिदान कर दिया ।

43. पापी को भी प्रेम से वश कर लो

कबीर के शिष्य पूरण ने कबीर से कहा कि "मेरा भाई सुरण आपका सत्संग चाहता है पर इतना ध्यान रहे कि वह अत्यंत दुराचारी है ।"

कबीर ने कहा, "भाई! प्रत्येक जीव में शिव है-भगवान है। अतः उसे मेरे पास भेजो ।"

दूसरे दिन पूरण सुरण को लेकर आया।

कबीर की एक पद्धति थी कि वह जो भजन गाये उसके अंत में, "कहत कबीरा, सुनो भाई साधु "पंक्ति तो आती ही थी।

आज सुरण अपने स्वरचित भजन सुनाने लगा। भजन का आखिरी पद आया तो तुरंत कबीर ने गाया – "कहत कबीरा सुनो भाई साधु ।"

उस वक्त बगल में बैठे पूरण ने कहा, "कबीरजी ! आप किसे "साधु" कह रहे हैं। मेरा यह भाई सुरण तो आला दर्जे का दुराचारी और शराबी है ।"

पर...पूरणकी बात सुने बिना ही कबीर तो वह पद बार बार गाते रहे। सुरण पर उसका जबरदस्त असर हुआ। वह सोचने लगा कि "मैं कितना अधमाधम हूँ। अति पापी हूँ। फिर भी यह आदमी मुझे साधु कह रहा है।

मेरे भाई ने एतराज जताया फिर भी वह मुझे बार बार "साधु" कहे जा रहे है और "भाई" कहे जा रहे है। संसार में सबने मुझे नफरत दी जबकि यह आदमी मेरे साथ कितने उत्कृष्ट प्रेम से बात कर रहा है।

और ...उसी दिन से सुरण के जीवन में बदलाव आ गया।

44. अशुभ निमित्ति की घातकथा

वह था संन्यासी; कुमारगिरि।

बाल ब्रह्मचारी।

रसनेन्द्रिय विजेता।

अत्यंत बहुश्रुत।

जीवन की सलामती के लिये अत्यंत जागरूक।

एक बार जोधपुर नरेश ने उनके दर्शन किये। उसके सर्वतोमुखी प्रतिभा के दर्शन से वह मुग्ध हो गये। नरेश ने विनति की :"आप मेरे राज्य में पधारकर मेरी भूमि को पावन कीजिए। जोधपुर से एकाध कोश दूर छोटा सा फिर भी कुदरत की गोद में खेल रहा एक आश्रम है। सदैव आप उसमें निवास कीजिए। यह मेरी साग्रह विनम्र विनति है।"

कुमारगिरि ने नरेश की विनति का स्वीकार किया। कुछ ही समय में उन्होंने स्थानांतरण किया।

आध्यात्मिक आनंद में वृद्धिमान हो रहे दिन, महिने गुजरने लगे।

एक दिन की बात है। नरेश के चंद्रलेखा नामक एक कुमारिका पुत्री थी। रुप और लावण्य में शायद वह बेमिसाल थी। माता से उत्कृष्ट संस्कार प्राप्त कर के वह आंतरसौंदर्य की भी साम्राज्ञी हुई थी।

एक बार उसने पिता से न्याय, व्याकरण, वेद, उपनिषद आदि ग्रंथों के अध्ययन की अभिलाषा व्यक्त की। जोधपुर राज्य में तो ऐसा अध्ययन कराने वाला कोई मूर्धन्य पण्डित नही मिला। आखिरकार नरेश की नजर संन्यासी कुमारगिरि की ओर गई। नरेश ने चंद्रलेखा की इस ईच्छा को कुमारगिरि के समक्ष रखी।

यह ईच्छा जानकर कुमारगिरि गहरी सोच में उतर गये। उनका मन इस बात को लेकर व्यग्रता अनुभव कर रहा था कि "कही ब्रह्मचर्यव्रत खतरे में तो नही पड़ जायेगा ? कुमारिका है; राजपुत्री है, लावण्यवती है। शास्त्रों ने तो सौ वर्षीया दादी को भी आठ वर्षीय अपने पौत्र के साथ भी एकान्त सेवन

करने से निषेध किया है। क्या किया जाये ? "पर दुर्भाग्य से संन्यासी ने साहस किया। उसके पीछे उसका तर्क यह था कि काम का प्रवेश आँखों से होता है। अतः मैं उस राजकन्या की ओर देखूँगा ही नही। तब तो मुझे कोई परेशानी नही होगी।

और ...एक शुभ मुहूर्त में पाठ शुरू हुआ। निश्चित समय पर चंद्रलेखा बग्गी पर आरूढ़ हो कर आश्रम आने लगी। कमरे की दीवार की ओर देखकर संन्यासी ने सबक देना शुरू किया। संन्यासी की विद्वत्ता, किसी भी ग्रंथ पर उनका प्रभुत्व, अध्यापन की कला, पाठ्यसामग्री कण्ठस्थ ...आदि विशेषताएँ बेमिसाल थी।

दो-तीन साल में तो चंद्रकला ने काफी कुछ सीख लिया।

पर अंत में ....एक काजलकाली क्षण आ ही गई।

किसी विषय पर गंभीर चर्चा चल रही थी पर कैसे भी करके चंद्रलेखा की समझ में पदार्थ समझ में आता ही नही था। अतः वह बार बार उस पदार्थ के बारे में सवाल करने लगी। संन्यासी ने कुछ कड़ा रूख अपनाया और तनिक गुस्से में आकर ऊँची आवाज में कह दिया "तू इतना भी समझती नही है ? "पर यह वाक्य बोलते समय कमरे की छत पर जमी नजर चंद्रलेखा की ओर गई। संन्यासी ने उसे आज पहली बार देखा।

हिरनी जैसी उसकी सौंदर्य –निथरती आँखें, लावण्य से चमकता उसका मुख देखकर एक ही क्षण में संन्यासी के मन-मदन ने अपना प्रभाव दिखाया। अति अल्प क्षणों में वे अपने आप पर से काबू गँवा बैठे।

एकाएक खड़े हुए, चंद्रलेखा की ओर चार कदम बढ़ाये और उसका हाथ पकड़ लिया।

चंद्रलेखा संन्यासी के मन का भाव समझ गई। वह आश्चर्य एवम् आघात से चौंक ऊठी परंतु तुरंत ही स्वस्थता धारण कर ली और उसने पकड़े हुए हाथ को जोर से खींचकर आलिंगन के लिए आगे बढ़ रहे संन्यासी को धक्का मार दिया। वह ऐसा बोलती हुई दौड़ गई कि "गुरुदेव ! यह क्या कर रहे हो ? मैं तो आपकी बेटी हूँ।"

"बेटी" शब्द ने कुमारगिरि के हृदय पर निशान बन जाये ऐसा तमाचा जड़ दिया !

संन्यासी की आत्मा पश्चात्ताप की अग्नि में सर्वांग जल ऊठी।

और वह दौड़ा....उसने आश्रम को छोड़ दिया, उद्यान छोड़ा, नगर छोड़ा, बही जा रही किसी पवित्र नदी के प्रचण्ड वेग से बहे जा रहे जल का लक्ष्य साधकर वह दौड़ने लगा।

अब नदी ज्यादा दूर नही थी। पर आकाश में मंडराये हुए काले बादलों ने खुलकर बरसना शुरू कर दिया। धारासार वर्षा हुई। देखते ही देखते धरती मानो जल प्लवित हो गई।

प्रचण्ड वेग से बह रहे जलप्रवाह में से संन्यासी दौड़ने लगा।

पर अफसोस ! किसी जहरिले साँप ने संन्यासी को काट लिया। दूसरे ही क्षण वह चकराकर जलप्रवाह की तटीय भूमि पर जा गिरा।

अब तो नदी का पवित्र जल सौ कदम की दूरी पर था। उसे वहाँ पहुँचना ही था। घसीटता हुआ वह दस कदम आगे तो बढ़ा पर विष का बहुत भारी असर हो रहा था। एक कदम भी आगे बढ़ने के लिए जब वह विवश हो गया तब उसकी आँखों से अश्रुधार बह निकली।

छोटे बच्चे की तरह सिसक सिसक कर रोते हुए वह कहने लगा, "ओ मैया ! तुम्हारे पवित्र जल में मुझे डूबना था।

तुम्हारे पावन स्पर्श से मुझे पवित्र होना था। मैं अपना जीवन बरबाद कर चूका हूँ ! मुझे तुम्हारी गोद में हमेशा के लिए विलिन होना था ! हे परमेश्वर ! मेरी इस अंतिम अरज को सुनो ! मेरी ईच्छा पूरी कर दो ! मैं पापी हूँ, नीच हूँ ! अधमाधम हूँ !"

उसी वक्त बगल में बहे जा रहे जल प्रवाह की गति इतनी तीव्र हो गई कि उसने संन्यासी को पानी के प्रवाह में खींच लिया।

देखते ही देखते वह पानी के अजस्त्र प्रवाह में बह गया। उस पवित्र नदी ने संन्यासी को उसी क्षण अपने में समा लिया तब संन्यासी के मुखमण्डल पर असीम आनंद झलक रहा था।

45. खुमारी एक क्षत्रिय कन्या की!

जाम रणजीत ! क्रिकेट की दुनिया में जो अमर हो गया वह !

विभा-जाम ने अपने इस गोद लिये हुए बेटे को विद्याभ्यास के लिए इंग्लैंड भेजा तब वक्त गुजरते वह किसी धनवान अंग्रेज कन्या से प्रेम करने लगा।

इस तरफ बडे - बुजुर्गों ने पालिताणा के पास स्थित टींबा नामक गाँव की गोहिल कन्या के साथ उसकी सगाई कर दी।

वक्त बीते रणजीत जामनगर के सिंहासन पर आसीन हुए। उसे वह सगाई तो रद्द करनी ही थी और अंग्रेज कन्या से विवाह रचाना था। अतः कीमती जवाहरात के डिब्बों सहित अपने खास लोगों को टींबा भेजा। गोहिल कन्या को सगाई रद्द करने की समझ देते हुए उसके समक्ष डिब्बा रख दिया गया।

उससे कहा; "बहन ! इतने से संतुष्ठ रहना और रणजीत बापू को भूल जाना।"

ये शब्द सुनकर बाघिन की तरह बिफरी हुई उस गोहिल कन्या ने तेजाबी भाषा में कहा; "आप मेरे हृदय की भावनाओं को दबाकर मेरे आत्मसम्मान को इस प्रकार खरीदने चले हो ? पर ऐसा नही होगा। अभी फौरन आप अपनी दौलत को लेकर टींबा का सिवान छोड़ दो। जवाहरात के डिब्बों से किसी का आत्म - सम्मान नही खरीदा जा सकता ! टींबा की यह कन्या आजन्म अविवाहित रहेगी। बस, यही संदेश आप अपने राजा को दे देना।"

(सच में वह कन्या अस्सी वर्ष की अवस्था में आजीवन अखण्ड कौमार्य का पालन करते हुए स्वर्गारोही हुई।)

जब रणजीत ने अपने दूत द्वारा गोहिल कन्या का संदेश जाना तब उसके दिल को गहरी चोट पहुँची। उसके शब्द रणजीत के कान में बारबार घोषित प्रतिघोषित होते रहे। उन शब्दों ने उसके जीवन को खुमारी से भर दिया। रणजीत ने भी आजीवन अविवाहित रहने का निर्णय कर लिया। रणजीत की अंग्रेज प्रेयसी ने किसी अंग्रेज से शादी कर ली और कुछ ही बरसों में वह विधवा भी हो

गई। रणजीत कई बार ईंग्लेंड जाते थे पर वह विधवा प्रेयसी मिलने के लिए आमंत्रित करे तो भी जाते नही थे।

जाम-रणजीत भारत के रजवाडों के मंडल के अध्यक्ष पद पर विराजमान हुए।

ईस्वी सन् १९३३ में दिल्ली में हुई राजाओं की परिषद् में उपस्थित रहने के लिए वे दिल्ली गये। उस समय वहाँ वाईसरॉय भी उपस्थित थे। रणजीत की सत्य को कटुतापूर्ण भाषा में स्पष्ट सुना देने की शैली से राजा अत्यंत नाराज हुए थे। इस परिषद् में भी भारत के रजवाड़े और समवायतंत्र की विरुद्ध में तैयार किया गया श्वेत-पत्र उन्होंने पढ़ना शुरु किया। अंग्रेज सरकार के कुछ मुद्दों पर उस पत्र में कटु आलोचना की गई थी। अतः यह सुनते ही क्रोधित हुए लोर्ड विलिंग्डन ने भाषण के बीच में ही Sit-Down Mr.Ranjit' शब्दों के द्वारा रणजित को बैठ जाने का आदेश दिया।

रणजीत को इस अपमान से बहुत बुरा लगा। उसी वक्त श्वेत-पत्र के कागज जमीन पर फेंककर सभा छोड़कर चले गये।

उपस्थित सभी राजाओं के समूह में इस घटना से सन्नाटा छा गया!

दूसरे ही दिन रणजीत ने वाईसरॉय के नाम पत्र लिखा : इस पत्र में उन्होंने लिखा कि - "जहाँ मेरी देशभक्ति की खुमारी को खत्म कर देने के लिये मुझे बाध्य होना पड़े ऐसे राजवीगण के अध्यक्ष पद को मेरी अलविदा!"

पटियाला के महाराजा भूपेन्द्र सिंह ने लोर्ड विलिंग्डन को बीस लाख रुपयों का नेकलेस उपहार स्वरूप देने से राजवीगण का अध्यक्ष पद मिल गया।

इस तरफ स्वाभिमानी राजा रणजीत को गहरा सदमा पहुँचा। उनका स्वास्थ्य इस सदमे से प्रभावित हुआ। ईलाज के लिए वे लन्दन गये।

ब्रिटन के अखबारों ने रणजीत को "अभिमानी" करार देकर बहुत मजाक ऊड़ाया गया। कई दिनों तक अखबारों ने उनका पीछा नही छोड़ा।

स्वास्थ्य लाभ के लिये रणजीत के लन्दन आगमन की सूचना भी अखबारों ने दी। यह पढ़कर रणजीत की पूर्व विधवा प्रेयसी रणजीत जहाँ ठहरे थे उस होटल सेवोय में उससे मिलने के लिये गई।

प्रेमभाव पूर्वक विविध बातें करते हुए उस प्रेयसी ने रणजीत से पूछा; "ओ डीयर रणजीत ! ब्रिटन के सम्राट की सरकार के विरुद्ध तुम इतना क्यों टकरा गये ? अखबारों ने तुम्हारी कितनी कटु निंदा की है?"

रणजीत ने कहा; "यह बात तुम नही समझ सकोगी क्योंकि तुम्हारे खून में भारतीयत्व नही है। आत्म सम्मान का अपमान तो किसी कीमत पर सह्य नही है। यह बात मुझे भारत की एक सन्नारी–मेरी धर्मपत्नी ने मुझे सिखायी है। "तुम्हारे प्यार को पाने के लिये उस वाग्दत्ता को मैंने जवाहरात का डिब्बा भेजा था और मुझे मुक्त करने के लिये कहा था। पर उस वक्त उसने उस डिब्बे को फेंककर मुझे कहलवाया कि जवाहरात के डिब्बे से किसी का आत्मसम्मान खरीदा नही जा सकता।

ये शब्द मेरे कानों में लगातार गूंजते रहते हैं। तब मैं सत्ता की कुर्सी के लिए या अंग्रेजों की खुशामद करने के लिये मैं अपने आत्म सम्मान को बेचने की कल्पना तक नही कर सकता। एक भारतीय नारी के स्वभाव में रही इस बात को मैं तुम्हें तर्कों के सहारे नही समझा सकता ! तुम्हारे हृदय में उतार नही सकता क्योंकि तुम भारतीय नारी नही हो।"

और ...तत्पश्चात् एक ही वर्ष में ब्रिटिशरों की आपखुदी की एड़ी तले अविरत कुचले जा रहे भारतीय राजवीगण को देखकर उससे पहुँचे सदमे से रणजित का देहावसान हो गया।

46. अनासक्ति, भरत की

ऐसा कहा जाता है कि राम को अरण्यवास से पुनः अयोध्या लाने के लिये माता कैकेयी को साथ ले जाकर भरत ने राम से बहुत विनति की थी पर उसका श्रम व्यर्थ रहा।

तब राम ने कैकेयी से कहा था कि, "माँ ! तुम सचमुच किसकी माँ हो ? तुमने तो भरत को मात्र अयोध्या का राज्य दिलाया परंतु शेष सारी धरती का राजा तो तुमने मुझे बना दिया।"

अयोध्या वापस लौटकर भरत उदासिन भाव से राम के नाम से राजकाज करने लगे। उन्हें राम

की अविरत याद आती थी। वे राम की खबर नियमित रूप से पाते रहते थे। जंगल के वनचरों को बुला-बुलाकर राम के क्षेमकुशल पूछे बिना भरत को एक दिन भी चैन आता नही था।

वनचरों से भरत को जिन जिन बातों की खबर मिलती गई –जैसे कि (१) राम फल-फूल खाकर अपना पेट भरते हैं। (२) अब राम ने वल्कल वस्त्र पहनना शुरू किया है। (३) उनकी दाढ़ी और मूँछ बढ़ रही है। (४) माथे पर बड़ी जटा बन गई है। आदि सबको भरत ने भी अपनी जीवनशैली में अमली बनाया।

जब भरत को इस बात की खबर हुई कि राम ने पर्णकुटिर में रहना शुरू किया है; तब वे कुछ देर के लिए मूढ़ हो गये। बाद में सीधे वह कौशल्या माता के पास गये। भरत ने उनसे पूछा: "माँ ! तुम्हें मुझे सदैव जिवित देखना है या मरा हुआ ?

47. आज कल रावण कितने!

राजा इन्द्र से हुए महायुद्ध में विजेता होकर राजा रावण लंका वापस लौट रहे थे कि रास्ते में "अनंतवीर्य" नामक वीतराग केवली भगवंत के उन्हें दर्शन हुए। स्वयं को धन्य मानते हुए रावण उनके पास गये। वंदनादि करके केवली भगवान की धर्मदेशना का श्रवण किया।

देशना पूर्ण होने के बाद रावण ने उनसे एक प्रश्न पूछा : "हे भगवंत ! आप जैसों की महती कृपा से पुण्य के उदय का सहयोग मिलेगा तो मैं शायद जीवन तो आनंदपूर्वक जीने केलिए भाग्यवान हो सकूँगा , पर मेरे मरण का क्या ? यदि मेरी मृत्यु अनिष्ट रूप से हुई तो मेरा समग्र जीवन कलंकित होगा। उपरांत मृत्यु के क्षणों की चित्त की शुभाशुभ स्थिति(लेश्या) के ऊपर ही परलोक की सद्गति का आधार है। अतः मेरी मृत्यु बिगडी तो परलोक भी बिगडेगा।

"अतः हे भगवन् ! आप त्रिकालज्ञानी हैं तो मेरा यह विनम्र प्रश्न है कि,"इस सेवक की मृत्यु कैसे

होगी?"

भगवंत ने उत्तर देते हुए कहा :"लंकापति ! आपकी मृत्यु परस्त्री के कारण होगी।"

यह सुनते ही मानों गाज गिरी हो ऐसे वज्राघात का रावण ने अनुभव किया।

वे एकदम बोल पडे :"अरे! अरे ! भगवन् ! राजा रावण के ललाट पर परस्त्री का काला कलंक ? मैं यह क्या सुन रहा हूँ ? प्रभो ! और कुछ भी सुना जा सकता है पर यह भविष्यवाणी मैं सुन नही पा रहा हूँ ! ओह ! लंकापति दुराचारी होगा ? परस्त्री की ओर वह कुदृष्टि करेगा ? इस हद तक वह अधम होगा ?"

रावण का अंत:करण असह्य पीडा का अनुभव करने लगा। कुछ ही पलों में स्वस्थता धारण कर वे पुन: कहने लगे :"भगवन् ! मुझसे यह कटुसत्य सहा नही जा रहा , मैं आत्महत्या करने केलिए तत्पर हूँ पर ऐसा कलंकित जीवन तो मैं कैसे भी करके जी नही पाऊँगा। प्रभो ! आप तो सर्वज्ञ हैं; सर्वदर्शी हैं; आपका वचन तो त्रिकालबाध्य ही है , मुझे इस बात में कोई शंका नही है परंतु मुझे एक प्रतिज्ञा लेनी है ,सावधानी बरतनी है ; ललाट पर लिखे उस लेख को मैं निष्प्रभाव करना चाहता हूँ.....

"मुझे प्रतिज्ञा दीजिए :"यदि परस्त्री नही चाहेगी तो मैं उसका संग नही करूँगा।"(परस्त्रियमनिच्छन्तीं रमिष्यामि नह्यहम्)

"भगवन् ! मैं अपनी जान देकर भी इस प्रतिज्ञा का पालन करूँगा।"

"और यदि....इस प्रतिज्ञा का ठीक से पालन हुआ तो इससे सम्बंधित कोई कालिख मेरे ललाट पर लगने की सम्भावना रहती नही है।"

रावण की याचना को अनंतवीर्य केवली ने अनुकूल होकर प्रतिज्ञा दी। राजा रावण संतुष्ठ हो गया। इस कलंक से स्वयं अब पूर्णरूपेण निर्भय हो गया है। ऐसी प्रसन्नता का अनुभव करते हुए रावण ने केवली भगवंत की वंदना की और वहाँ से बिदा ली।

अकाट्य कर्मों की आंधी से लड लेने की प्रतिज्ञा से प्रतिबद्ध होकर पुरुषार्थ करनेवाले राजा रावण ! आप धन्य हैं ! यदि आपने यह प्रतिज्ञा नही ली होती , यदि आपने उसका पालन नही किया होता तो सचमुच परस्त्रीगमन का पाप आपकी देह को अपवित्र कर गया होता। एक महासतीजी के

जीवन का आपने शायद असमय ही इत्यलम् कर दिया होता !

वंदन हो...परमात्माओं के प्रतिज्ञा के आयोजन को !

प्रतिज्ञा ने असंख्य पापों से कितनों को बचा लिया होगा ?

जिसने सावधानी बरती, प्रतिज्ञा की,उनके जीवन पापों की प्रचण्ड बाढ में डूबने से, खिंचे चले जाने से...मरने से आबाद बच गये !

इतिहास के अनेक पृष्ठ इस सत्य के साक्षी हैं।

48. कत्ल का एक कातिल पल

(समग्र जीवन धर्मध्यान में व्यतीत हो पर यदि एकाध ऐसा पापी क्षण आ जाये तो समस्त साधनाएँ उपासनाएँ या आराधनाओं के अमृतकुम्भ एकबार तो शायद लुढक ही जायेगा। जीवन में कृत साधनाएँ यदि कमजोर या बेमन से की हो तो पाप का एकाध तीक्ष्ण क्षण (मन के साथ जुडी हो ऐसी) उसे पदच्युत कर सकता है।

आध्यात्मिक जगत में कभी अनेक "प्लस" की अपेक्षा एकाध "माइनस" का बल अत्यंत खूँखार हो जाता है।

यहाँ एक ऐसी आत्मा की कहानी आप पढेंगे, जो जीवन के आखिरी क्षणों में भारी भूल करके बडे लाभ से वंचित हो गई। जहाँ हाथी उपहार स्वरूप मिलनेवाला था,वहाँ गधा भेंट में मिला।)

मगध के शालिग्राम में जन्मा एक ऐसा अभागी बालक था , जिसने गर्भावस्था में पिता को गँवाया था और जन्म लेने केसाथ ही माता को गँवाया था। अरे ! जिसके जन्म लेने केसाथ ही लक्ष्मी घर से बिदा होने लगी थी।

बेचारा बालक ! शारीरिक पुण्यहीनता की पराकाष्टा को प्राप्त हुआ था। नितांत कुरूप शरीर ,दोनों पैर टेढे , बहुत बडा पेट, बहुत लम्बी होने के कारण बाहर नाभि की नाल झूल रही थी। बेडौल

छाती,छोटे हाथ, बडे नथुनेवाली नाक, खोपरे जैसे कान, तिकोनिया माथा....नाम था नंदिषेण।

निष्पुण्यक को कौन लाड-दुलार करेगा भला ! सब से तिरस्कृत-उपेक्षित इस बालक को आखिरकार मातुल (मामा) के घर आश्रय मिला। घर की मजदूरी के काम में मामा ने उसे लगा दिया।

सख्त परिश्रम करने के बदले में मामा उसे दो वक्त का खाना दे देते थे। मामा को ऐसा फोकट में बेगारी करनेवाला जो मिल गया था।

कुछ समझदार हुए नंदिषेण को लोगों ने मामा की नियत बताई और उसे मामा के विरुद्ध भडकाने लगे।

भोला नंदिषेण उनकी बातों में आ गया। काम में थोडा कम ध्यान देने के कारण मामा ने उसे एक दिन समझाया। उसके मन की बात को जानकर मामा ने उसे खूब आश्वस्त करते हुए अपनी सबसे बडी बेटी का विवाह उसके साथ करा देने का वचन भी दे दिया।

पर जब इस बात का पता जब बडी लडकी को चला तब उसने ऐसे कंगाल के सहारे जीवन जीने से बेहतर आत्महत्या कर लेने की बात जाहिर की।

इस बात से घबडाये हुए पिता ने वचन तोड देने का आश्वासन दिया और दूसरी बेटी की शादी नंदिषेण से करा देने की बात कही।

दूसरी बेटी को इस बात की खबर होने पर उसने भी आत्महत्या का विचार व्यक्त किया।

इस सारी झंझट से व्यथित नंदिषेण जीवन से ऊकता गया था। एक दिन वह आत्महत्या कर लेने के इरादे से मुँह अंधेरे घर से रवाना हो गया।

पर्वत के शिखर पर चढकर अंधीकूद लगाने केलिये तैयारी कर रहा था कि सद्भाग्य से कोई त्यागी मुनिवर से भेंट हो गई। उन्होंने उसे समझाते हुऐ कहा कि : "आत्महत्या कोई दुःखों का हल नही है। यदि सारे दुःखों का अन्त लाना है तो दीक्षा का मार्ग अपना ले।"

नंदिषेण को यह बोध अमृत से भी मधुर अनुभव हुआ।

अब अभागी नंदिषेण बडबागी नंदिषेण हुए।

स्वाध्याय,ध्यान और तप के त्रिवेणी संगम हुए। महाज्ञानी,महातपस्वी हुए पर उससे भी अधिक तो वे महामुनि और मुनिवरों की सेवाशुश्रूषा में एकाकार हुए।

बीमार,वृद्ध तपस्वी मुनियों की सेवा शुश्रूषा की उनकी पराकाष्टा की प्रशंसा देवेन्द्र ने देवों की सभा में की। अतः देवों ने उनकी कसौटी की। जिसमें नंदिषेण मुनि सांगोपांग पार उतर गये। महाज्ञानी साधु सम्पूर्ण निराभिमान केसाथ सारे साधु-भगवंतो की सेवा-टहल करते थे। उनका पिशाब-पाखाना भी साफ कर देते थे...यह कोई साधारण बात नही।

ऐसे अखण्डित रूप से उत्कृष्ट सेवा करते हुए मुनिवर नंदिषेण के जीवन का अंतकाल निकट आ गया। उन्होंने मरण-समाधि केलिये अनशन का स्वीकार किया। आजीवन आहार,पानी,औषधादि का सम्पूर्ण त्याग कर दिया। आखिरी क्षणों में जब वे परमेष्ठीमंत्र का जप कर रहे थे तब....

हाय ! पापी विचार की एक काजलकाली बदली उनके पूरबहार जीवन में प्रकाशित जीवन क्षितिज में यकायक वेगपूर्वक आ गई और वह प्रकाश खत्म हो गया। चारोंओर अंधकार छा गया।

उन्हें अपना गृहस्थ जीवन याद आ गया। अपनी पुण्यहीनता याद आ गई। मामा की बेटियों द्वारा की गई अवमानना याद आ गई।

और...और...

वह मन ही मन बोल पडे : "इस भव में ही मैंने विपुल तप-त्याग आदि द्वारा विपुल पुण्योपार्जन किया है। उसका क्या उपयोग ? मैं संकल्प करता हूँ कि मुझे इस पुण्य के बदले में आनेवाले भव में ऐसी सैंकडो रूपसुंदरियाँ प्राप्त हो , जिनके देहसुख को मैं अघा-अघाकर भोग सकूँ।"

और उस मुनिवर ने प्राण त्याग कर दिये !

अंतिम क्षणों में कैसी बरबादी !

चिणोट्ठी केलिए रत्न बेच दिया !

हाथी बेचकर गधा खरीद लिया !

आग दागकर संयमवन को खाक कर दिया।

49. महासती पिंगला

(अब इतिहासविद कहते हैं कि :"भतृहरि की रानी पिंगला तो महासती थी । आम्रफल का प्रसंग और एतद्विषयक "धिक् तां च तं च मदनं च..."श्लोक कल्पित है । ये इतिहासकार भतृहरि और पिंगला का जो चारित्र्यालेखन करते हैं ,वह इस कथा में दिया गया है।)

एक दिन की बात है । राजा भतृहरि और महारानी पिंगला झरुखे में बैठकर बतरस का आनंद ले रहे थे । राजमहल के सामने ही नदी तट था ।

ऐसे में उन्होंने नदी की रेत उपर से कुछ लोगों के समूह को गुजरते हुए देखा । उस समूह में सब से आगे एक नवयौवना थी । रणचण्डी जैसा उसका स्वरूप था । उसके केश खुले हुए थे । शरीर गुलाल रंग से रंगा हुआ था । उसके पीछे कुछ लोग किसी मृतात्मा की अर्थी लेकर चल रहे थे । अर्थी के पीछे उसके स्वजनों का समूह चल रहा था ।

महारानी पिंगला के लिये यह एक अद्भुत दृश्य था । कुतूहलवश उसने राजा भतृहरि से पूछा :"यह सब क्या है ?" यह औरत ऐसे रूप में क्यों है ?"

राजा ने कहा कि उस जवान स्त्री के पति की मृत्यु हुई है । उसके अग्निसंस्कार करने केलिए लोग स्मशान की ओर जा रहे हैं । आगे चल रही औरत अपने पति की चिता में उसका मस्तक अपनी गोद में लेगी और वह भी जलती हुई चिता में जिन्दा जल जायेगी । इस प्रकार यह औरत सती होगी ।"

मुख पर तनिक गम्भीरता धारणकर पिंगला ने कहा कि :"यह कोई सती कहलाने के लक्षण नही है। सती स्त्री तो वही कहलायेगी जो पति की मृत्यु हुई है -ऐसा सुनते ही उसके प्राण निकल जायँ । यह औरत तो अभी जिन्दा है ; उसे मरने का प्रयत्न करना है। हट्..."

भर्तृहरि ने कहा :"पिंगला ! तुम कुछ ज्यादा ही बोल रही हो । आदर्श और आचरण में बहुत बडा अंतर होता है । तुम इस औरत का सम्मान नही कर रही हो ,यह अच्छी बात नही है ।"

"स्वामीनाथ ! क्या सम्मान करूँ ? इसमें मुझे सतीत्व नजर नही आ रहा है । अन्यथा यदि मेरे

यहाँ कोई घटना घटेगी तो देखियेगा। मेरे साथ क्या होता है। अरे ! एक ही पल में मेरे प्राण निकल जायेंगे।"

"पर...क्या करूँ ? इस सत्य को दिखा देने केलिए मैं लाचार हूँ क्योंकि तब आप नही होंगे।"

भर्तृहरि ने पिंगला की बातों में बडाई और भावुकता के आवेग का अनुभव किया। उसने तत्क्षण पिंगला की बातों की परीक्षा करके पिंगला को बोध प्रदान करने का मन ही मन दृढ संकल्प कर लिया।

कई दिन बीत गये। मजाक के क्षणों में हुई इस बात को तो महासती पिंगला ने कब का विस्मृत कर दिया था पर राजा भर्तृहरि ने तो एक नाटक (ढोंग) सोच लिया था। बेचारा राजा ! वह जानता नही था कि यह नाटक बहुत भारी पडनेवाला है !

एकाएक युद्ध का स्वांग रचाकर राजा पिंगलादेवी के पास जाकर आक्रमणकर्ता शत्रु को रोकने केलिए तत्काल सेना लेकर चल पडने की बात कही। पिंगला ने पति को आशीर्वाद देकर बिदा किया। घोडों के दौडने की आवाज गरजने लगी। कुछ ही क्षणों में राजा अदृश्य हो गये।

रोज सुबह होती है,शाम ढलती है और पिंगला छत पर चढकर स्वामीनाथ के आगमन की खबर देनेवाले घोडों के दौडने की आवाज और उडती हुई धूल के दर्शन करने केलिए उत्सुक होती है।

एक दिन पिंगला ने दूर दूर धूल उडती हुई देखी। जल्दी जल्दी वे नीचे उतर आयीं। उसी वक्त तेज गति से हवा से बातें करता हुआ एक घुडसवार भी पिंगलादेवी के समक्ष आ खडा हो गया।

घोडा श्यामांग था। असवार के वस्त्र काले थे। मुँह भी काला पडा हुआ था।

रानी ने किसी अमंगल का अनुमान किया। पिंगलादेवी के चरणों में गिरकर वंदन करते हुए अश्वारोही से अपने दिल की धडकनों को शांत करते हुए पूछा :"सैनिक ! महाराजा का स्वास्थ्य तो ठीक है ना ?"

"महारानीजी ! स्वास्थ्य ठीक न हो तो राजवैद्य तो साथ ही हैं। वे फौरन उपचार नही कर सकते थे ऐसा नही है। अश्वारोही ने गम्भीरता धारण करके कहा।

तो क्या महाराजा युद्ध में घायल हुए हैं ?"हडबडाकर पिंगलादेवी ने पूछा।

"महारानीजी ! ऐसा होता तो पाटापट्टी करने में कुशल लोग हमारे साथ ही थे ना ! वे सब ठीक

कर देते।"

यह सुनते ही पिंगलादेवी किसी महा अमंगल की खौफनाक कल्पना करने लगीं। उन्होंने पूछा :" अश्वारोही ! तुम मुझे अविलम्ब बता दो कि तो क्या स्वामीनाथ ने इस संसार से बिदा ले ली है ?"

अश्वारोही ने बताया : "जी।"

और तत्क्षण महासती पिंगलादेवी धरती पर पछाड खाते हुए गिरीं और उनका प्राणपखेरू तत्क्षण उड गया।

"हाय ! यह क्या हो गया ?यह तो नाटक था और पिंगलादेवी तो अनंत की यात्रा पर सिधार गईं।" घुडसवार स्वगत बोलते हुए घबडाहट के कारण मूढ हो गया।

अब महाराजा के साथ क्या होगा ? पिंगलादेवी के देहावसान के समाचार को कैसे सह पायेंगे ? अरे ! क्या इस आघात के कारण उनका देहविलय तो नही हो जायेगा ?"ऐसे अनेक विचारों के चक्रवात में फंसा हुआ सैनिक पवन गति से महाराजा की शिविर की दिशा में बढने लगा।

महाराजा छावनी के बाहर सैर करते हुए अश्वारोही की प्रतिक्षा कर रहे थे। यह नाटक जल्दी खत्म करके पिंगला के पास जाकर वे बता देना चाहते थे कि :"पिंगला ! देखा न , कहना आसान है पर कर दिखाना कठिन है।"

पर जहाँ अश्वारोही की मुखाकृति को देखा कि महाराजा भर्तृहरि की साँस गति तेज हो गई। उनके रोम रोम में भययुक्त सिहरन दौडने लगी।

और उन्हें जब खबर हुई कि सचमुच महारानी ने परलोक गमन कर लिया है कि वे बेहोश होकर जमीन पर आ गिरे।

घंटों तक वे अचेतावस्था में रहे। अनेक उपचारों के बाद बडी मुश्किल से होश में आये पर एक ही बात शुरू कर दी : "पिंगला ! तुम वापस लौट आओ। मुझ से बडी भूल हो गई है। मुझे क्षमा करो और तुम वापस लौट आओ।"

महाराजा का आघात असह्य था। राजा ने अन्न-जल का त्याग कर दिया था। विचक्षण मंत्रीमण्डल के महाराजा को समझाने के सारे प्रयास विफल सिद्ध हुए।

एक दिन !

दूसरा दिन !

तीसरा दिन !

सबको लगा कि महादेवी के पीछे पीछे महाराजा भी परलोक गमन कर लेंगे। बिना अन्न-जल के कितना टिक पायेंगे। यह असह्य आघात कितना जीने देगा ?"

एक ही बात...."पिंगला ! तुम वापस लौट आओ ...मुझसे भूल हो गई है। मुझे क्षमा कर दो...वापस लौट आओ।"

चौथे दिन की सुबह मंत्रियों ने किसी संन्यासी को छावनी की ओर आते हुए देखा। उन्होंने उनके पास जाकर राजा की जान बचा लेने हेतु कोई उपाय करने केलिए बिनती की। संन्यासी ने कहा,"यह तो मेरा काम है। आप परे हो जाइए।"

भर्तृहरि सामने से उसी बात को चलाये हुए आ रहे थे। ठीक उनके सामने संन्यासी जाने लगे। नदी के तट पर एक शिला पडी हुई थी। दोनों वहाँ मिले कि तुरंत संन्यासी ने काष्ट से बना अपना कमण्डलु शिला केसाथ जोर से टकराया और उसे तोड दिया।

बाद में भारी गुस्सा करते हुए शिला को मुक्के मारते हुए कहने लगे कि : "मेरा कमण्डलु वापस कर दे...अभी फौरन वापस कर दे।"

यह दृश्य देखकर राजा ने उनसे कहा :"स्वामीजी ! कमण्डलु तो वापस नही आ सकता। जो टूट गया है वह वापस कैसे आयेगा ? आप ऐसा कीजिए,मैं आपको सोने का नया कमण्डलु भेंट करता हूँ। "

लेकिन स्वामीजी तो जोर जोर से शिला पर मुष्टिप्रहार करते हुए कहने लगे "मुझे तो मेरा वही काष्ट का कमण्डलु चाहिए।"

मुस्कुराकर भर्तृहरि ने कहा :"स्वामीजी ! ज्ञानी होकर आप ऐसी नादानियत से भरी बातें नहीं कीजिए। गया हुआ कमण्डलु वापस लौट ही नही सकता।"

यह सुनकर एकदम गम्भीरता धारण करके संन्यासी ने कहा :"तुम्हें क्या पता ? जब महाराजा भर्तृहरि की पिंगलादेवी वापस आ सकती है तो मेरा कमण्डलु क्यों नही वापस आ सकता?"

बस यह सुनते ही राजा की आँखें खूल गई। उन्होंने सत्य समझ में आ गया। विनाशी जगत के प्रति विराग उत्पन्न हुआ और तत्क्षण संन्यास लेकर भर्तृहरि ने संसार का त्याग कर दिया।

50. जैनाचार्य की अपूर्व दूरदर्शिता

(जहाँ जैन संघ की एकता में गिरावट आयी कि वहाँ एक जैनाचार्य ने अद्‌भुत दक्षता केसाथ संघ की एकता को अक्षुण्ण रखा। यह इस कथा में दर्शाया गया है।)

वह थे तेइसवें तीर्थंकर,त्रिलोक गुरु परमात्मा पार्श्वनाथस्वामीजी की पाट परम्परा के पांचवे पट्टधर श्री रत्नप्रभसूरिजी ! चौबीसवें त्रिलोकगुरु परमात्मा महावीर देव के निर्वाण के अनन्तर सत्तर वर्ष बाद इस सूरिजी ने अपनी बहुरूपा विद्या के बल से एकसाथ ओसीआ और कोरटा (कोरंटक) में माघ सुद पंचमी के दिन जिनबिम्बों की प्रतिष्ठा की। अपने मूल स्वरूप से ओसीआ में प्रतिष्ठा की। वैकिय रूप (मायावी) रूप से कोरटा में की।

जब कोरटा के जैनसंघ को इस बात का पता चला कि सूरिभगवंत श्री रत्नप्रभसूरिजी ने अपने नगर के जिनालय में जिनबिम्बों की प्रतिष्ठा मायावी रूप से की है ,तो संघ ने बहुत दु:ख किया। सबके मन में एक ही प्रश्न था कि "हमारे यहाँ सूरिजी ने अपने मूल स्वरूप में प्रतिष्ठा क्यों नही की ?"

उस समय कोरटा में उसी सूरिजी के विद्वान शिष्य विराजमान थे। उनका नाम कनकप्रभमुनि था। कोरटा के संघ ने एकत्र होकर अत्यंत दुखी मन से निर्णय किया कि "अब के बाद रत्नप्रभसूरिजी की आज्ञा में नहीं रहेंगे और यहाँ विराजमान कनकप्रभ मुनि की आज्ञा में रहेंगे। हमारे नेता केरुप में उन्हें ही मान्य किया जाये; अत: हमारा संघ उन्हें आचार्य पद पर आरूढ करे।"

ऐसा निर्णय करके संघ मुनिजी के पास गया । अपने आघातपूर्ण दु:ख की बात कहकर आचार्यपद ग्रहण करने केलिए बिनती की । मुनिजी ने "हाँ...ना" तो की पर अंततः श्रीसंघ के भारी आग्रह के वश होकर उन्होंने आचार्य पद का स्वीकार कर लिया।

ओसिआ में विराजमान समस्त संघ के नेता श्री रत्नप्रभसूरि को इस बात की खबर हुई । उन्हें लगा कि अब यदि इस बाजी को सम्हाल नही लिया जायेगा तो जैनसंघ दो टूकडों में विभक्त हो जायेगा ।

किसी शूभ मुहूर्त में सूरिजी ने कोरटा की दिशा में विहार किया । कोरटा संघ ने भव्य नगर प्रवेश कराया । संघ के अग्रणी मन ही मन बहुत भयभीत हो गये थे । उन्हें लगा था कि पूज्य सूरिजी अपने प्रवचन में हमारे द्वारा उठाये गये कदम के लिए उलाहना देंगे । नूतन आचार्य कनकप्रभसूरिजी को भी गुरुदेव कीओर से डाँट-डपट पाने की आशंका थी ।

प्रवचन प्रारम्भ हुआ । कुछ समय बाद सूरिजी ने प्रवचन के विषय से हटकर घटित घटना उपर बोलना शुरू किया कि "कोरटा श्रीसंघ को मेरी तरफ से बहुत बहुत धन्यवाद । उसने मेरे सुविद्वान शिष्य कनकप्रभ को आचार्यपद पर आरूढ करके मेरी जिम्मेदारी को आधा कम कर दिया है ।"

अब मुख्य बात का खुलासा करना चाहूँगा कि :मैंने मायावी रूप से आपके जिनालय में जिनबिम्बों की जो प्रतिष्ठा की ,उसके पीछे मेरा खयाल यह था कि आप हमारे पूज्यपाद परम कृपालु गुरुदेव के पुराने ,समझदार और दृढव्रती श्रावक हैं । अतः आप अन्यथा नही लेंगे परंतु मेरी वह कल्पना क्षतियुक्त निकली और मैंने आप सब को दु:ख पहुँचाया । अतः मैं आप सब से अंतःकरणपूर्वक क्षमा चाहता हूँ।"

सूरिजी वाक्धारा जैसे जैसे प्रवहमान होती चली ,श्रीसंघ की आँखों से अश्रुधारा बहने लगी ।सूरिजी की ऐसी परम कृपापूर्ण उदारता केप्रति सब मन ही मन भावपूर्ण वंदना करते रहे ।

आगे चलकर सूरिजी ने कहा :"आपने तो कनकप्रभमुनि को आचार्य पद पर आरूढ किया पर मैं आज उन्हें वासक्षेप प्रदान करके अपने ही हाथ से विधिवत् उस पद पर आरूढ करता हूँ ।"इतना कहकर उन्होंने कनकप्रभमुनि पर वासक्षेप वर्षण किया । कनकप्रभसूरिजी अब बोले तो क्या?

शिष्यभाव से सिसकियाँ भरते रहे और क्षमायाचना करते रहे। उसी समय श्री कोरटा संघ ने सूरिजी के समक्ष आनेवाले चातुर्मास देने केलिए बिनती की। सूरिजी द्वारा इस बिनती का स्वीकार कर लेने पर गगनभेदी नाद केसाथ संघ ने अपना हर्ष व्यक्त किया।

सूरिजी ने ओसीआ संघ के उपस्थित अग्रणियों से नूतन सूरिजी के ओसीया में आगामी चातुर्मास केलिए बिनती करने की प्रेरणा प्रदान की। नूतन सूरिजी ने भी ओसीआ चातुर्मास स्थिरता केलिए सम्मति प्रदानकर जयघोष किया। समस्त संघ अत्यंत आनंदोल्लसित हो गया।

51. त्यागी के सुख को भोगी क्या समझे

(एक प्रेरक अजैन कथा।)

कहा जाता है कि एकबार लक्ष्मीदेवी और नारायण इस धरती पर सैर करने चले।अनेक नगर, उद्यान,पहाड और नदियों के दर्शनानंद लेते हुए आगे बढ रहे थे कि एक जगह पर गटर के अति गंदे पानी में लक्ष्मी जी ने सुअर परिवार को देखा।

लक्ष्मीजी के मन में विचार आया कि मेरे पति नारायण देव ! इस समस्त धरती के स्वामी ! उनके शासन में ऐसी गंदगी ! अरे ! यह तो नरक है नरक ! कैसे भी करके इन जीवों को इस गंदगी से बाहर निकालना ही चाहिए।

वैकुण्ठ पहुँचकर तुरंत लक्ष्मीजी ने उस सुअर परिवार को परेशानी से मुक्त करने केलिए बिनती की।

नारायण ने लक्ष्मीजी से कहा कि : अरे ! इस सुअर की प्रकृति ही ऐसी है कि उसे वैसा ही अच्छा लगता है। हम उसे छुडाना चाहेंगे तो भी वह उससे बाहर निकलने केलिए तत्परता नही दिखायेगा।"

पर लक्ष्मीजी ने अपने पति की इस बात पर तनिक भी भरोसा नही किया। उन्होंने कहा कि :"आप अपनी मनमानी क्यों चला रहे हैं ? उन बेचारे जीवों को उस नारकीय गटर से छुडाकर अपने वैकुण्ठ में

लाने का प्रयास तो कीजिए। नारदजी को वहाँ फौरन भेज दीजिए।

आखिरकार नारायण ने नारदजी को अपने दूत के रूप में उस सुअर के पास धरती पर भेजा।

नारदजी तो एक ही पल में वहाँ पहुँच गये। सुअर परिवार के बुझुर्ग से मिलकर उन्होंने कहा:"आप

सब को हमेशा केलिए वैकुण्ठ में आकर बसने केलिए भगवान नारायण का आमंत्रण है। आप सब मेरे साथ चलिए।"

सुअर ने मूख पर गंभीरता धारण करके पूछा कि "यह नारायण कौन है ?"

नारदजी ने बताया :"समग्र सृष्टि के पालक हैं।"

हाँ ...तब तो वह हम सबसे बडा सुअर होगा। क्यों?" सुअर ने नारदजी से पूछा।

यह सुनकर अकुलाये हुए नारद ने नारायण नारायण कहते हुए कहा :"चूप भी कर...बेवकूफ। वह कोई सुअर नही है। भगवान हैं भगवान।"

बाद में सुअर मादासुअर के पास गया और उसने प्राप्त आमंत्रण के बारे में सारी बातें कही और पूछा कि तुम्हारा क्या विचार है ?"क्या हमें वैकुण्ठ जाना चाहिए ?"

मादा सुअर ने कहा,"ऐसे जल्दबाजी नही करते। पहले तो नारायण के उस दूत से पूछ लिजिए कि क्या उस वैकुण्ठ में घूरा मिलेगा ? हमें तो बुत बडे घूरे और गटर की नालियाँ हों तभी वहाँ जाने केलिए सोचना है !"

"उपरांत उस दूत से पूछ लिजिए कि हमें यहाँ जो विष्टा का मिष्टान्न मिलता है क्या वह वहाँ मिलेगा या नही? जब हमें वैकुण्ठ में स्ताई निवास केलिए जाना ही है तो इतनी पडताल तो कर ही लेनी चाहिए। यदि इतना भी नही मिले तो मेरे बच्चों का क्या होगा ? बेचारे भूखों ही मरें ना ? हाँ...इसके सिवाय कुछ और कम-ज्यादा मिलेगा तो चला लेंगे पर घूरे,नालियाँ और विष्टा आदि तीन तो मिलने ही चाहिए।" अपनी पत्नी की ऐसी समझदारी देखकर सुअर तो मन ही मन प्रसन्नता का अनुभव करने लगा।

उसने नारद के पास जाकर बेखौफ पूछ लिया कि :"हमें वैकुण्ठ में घूरे,नालियाँ और विष्टा के मिष्ट भोजन मिलेंगे या नही?"

यह सुनकर सुअरों की जमात केप्रति मन ही मन धिक्कार व्यक्त करते हुए नारद ने कहा :" भाई ! वहाँ तो ऐसी गंदगी खोजने पर भी नही मिलेगी। ऐसा पूछते हुए शर्म भी नही आ रही ? कैसे हो तुम? नारायण...नारायण.... ।"

नारदजी की बात सुनकर वह मादा सुअर उनके पास दौड गई और जोर जोर से चीखते हुए कहने लगी : "आपके नारायण नामक बडे सुअर को धिक्कार है कि जिसने अपने नगर में मोरी या विष्टा की व्यवस्था भी नही की है।"

यह सुनकर दंग रह गये नारद वहाँ से पलायन हो गये। वैकुण्ठ जाकर सारा वृत्तांत पेश किया। यह सुनकर लक्ष्मीजी तो एकदम सन्न रह गईं।

(इस संसार के भोगी जन त्यागियों को कभी कभी भोग रस के भौंडे सवाल पूछते हैं तब इस कथा का स्मरण हो आता है।)

52. जैनाचार्य की दूरदर्शिता(गीतार्थता)

उस जैनाचार्य का नाम पादलिप्तसूरिजी था। वे ज्ञान के सागर थे। वे संयम के प्रकाश थे। वे धर्मशास्त्रों के प्रति वफादार थे।

एकदा उन्होंने एक ग्रंथ का प्रणयन किया। वह एक अद्‌भुत ग्रंथ रचना थी। जिसने भी उसकी प्रति का पठन किया ,उसके मुख से प्रशंसा की पुष्पवर्षा होने लगी।

पर कहावत है ना कि जब सारी वनराजी खिलने लगती है तब जवास मुरझाने लगता है। कोई ब्राह्मण पण्डित जैनाचार्य की प्रशंसा को सह नही सका और ईर्ष्यावश नखशिख जलने लग।। वह येन केन प्रकारेण उस जैनाचार्य की अपकीर्ति करने के लिए कोई मौका खोजने लगा।

और...एक दिन उसे वह दाँव हाथ लग ही गया। उसने शिघ्र ही जैनाचार्य के उस नून ग्रंथ की पुराने पृष्ठों पर पाण्डुलिपि बनवा ली और उसे राजसभा में घोषित किया कि पादलिप्तजी ने इस पुरानी पाण्डुलिपि की नकल करके इस रचना को अपने नाम पर चढा दिया है। ऐसे हैं ये कपटी जैनाचार्य !

लोगों का तो कहना ही क्या ? कुछ भी सोचे समझे बिना या बिना जाँच पडताल किये लोग पादलिप्तजी की निंदा करने लगे। अब तो चारोंओर ब्राह्मणों में उनकी भारी निंदा होने लगी।

जैन संघ में भी कहीं-कहीं सूरिजी के विषय में शंका-कुशंका की जाने लगी। एक ही दिन में सूरिजी ने परिस्थिति का जायजा ले लिया। उन्होंने सोचा कि इस घोर असत्य को भी यदि नियंत्रित नहीं किया गया तो चारोंओर मेरी और जिन धर्म की घोर निंदा होती रहेगी। कई बार कागज पर बनाया गया बाघ का चित्र भी नादान बालक को डराकर उसकी जान लेवा हो जाता है।

सूरिजी ने संघ के नायकों को एकत्र किया। वह समय जिनधर्म की जाहोजलाली का अलबेला काल था। अनेक आत्माएँ जिन धर्म को प्राप्त करके अपनी मानव-जीवन यात्रा को सार्थक कर रही थी। उनके हृदय में देव-गुरु के प्रति अपार भक्ति के उमदा संस्कार थे।

संघ के श्रद्धाशील नायकों को इकट्ठा करके सूरिजी ने कहा :"पुण्यवान धर्मात्माएँ ! जिस प्रकार असत्य बात को ब्राह्मणों द्वारा फैलाया जा रहा है , इससे जिनधर्म की पारावार निंदा हो रही है। मुझे इसका उपाय करना है पर इसमें आप सबका सहयोग चाहिए। मैं जैसा कहूँ, वैसा करने का आप सब मुझे आश्वासन दीजिए और पेट की बात को पेट में ही दबी रहने देने का विश्वास दीजिए ; जिससे अंदर की बात अंदर ही रहे।"

श्रद्धावान धर्मात्माओं ने सूरिजी को भरोसा दिलाया। सूरिजी ने कहा :"कल सुबह आप मेरी कालधर्म को प्राप्त हो जाने की घोषणा कर दो और मेरी पालकी यात्रा निकालना। मैं रास्ते में ही अपना काम पूरा कर दूँगा और धर्म की निंदा का निवारण भी कर दूंगा ; पर यदि मैं ऐसा न कर सका तो भी मुझे चिता पर चढाकर मेरे अग्निसंस्कार कर देना।"दूसरे दिन योजनानुसार किया गया। सूरिजी की कालधर्म प्राप्ति की खबर चारोंओर फैल गई। उस इर्ष्यालु ब्राह्मण को भी इस बात की खबर हो गई। उसने विचार किया कि "मेरे झूठे आरोप के कारण ही एक महान जैनाचार्य को भारी सदमा पहुँचा और

उनका प्राणान्त हो गया ! अरर ! मैंने यह क्या कर दिया ? अब इस पाप से मेरा कौनसे भव में छूटकारा होगा।"

स्मशानयात्रा उस ब्राह्मण के घर के पास से ही गुजर रही थी। पालकी जैसे ही उसके घर के निकट आयी कि वह ब्राह्मण दौडता हुआ आया। पालकी के आगे घूटनों के बल बैठकर तीव्र रुदन करने लगा। धर्मात्माओं ने पण्डित को शान्त करने का प्रयत्न किया तब उसने घटस्फोट करते हुए अपना सारे पापों का स्वीकार कर लिया और पुनः जोर जोर से रोने लगा।

ब्राह्मण की बात सुनकर सारे दिंग्मुढ हो गये। उसी समय पालकी में बैठे हुए सूरिजी ने ब्राह्मण को "धर्मलाभ" कहकर बुलाया। सूरिजी जीवित हैं ,यह जानकर नगरजन आनंदित हो गये। ब्राह्मण द्वारा अपने पाप का स्वीकार कर देने से धर्म की निंदा का निवारण हो गया। जैन धर्म का जय जयकार होने लगा।

कैसे महान सूरिजी-पादलिप्तजी ! कैसी उनकी व्यूहरचना ! कैसा उनका सब केप्रति समान वात्सल्य भाव ! पीछे हठ में भी कैसी आगेकूच ! नकल में भी कैसी असलियत!

वंदन ! वंदन ऐसे शासनप्रभावक सूरिपुंगवों को !

53. परलोक दृष्टि और पापभीरूता

उज्जयिनी में श्रेष्ठि धनमित्र ने अपने पुत्र धर्मशर्मा को साथ लेकर संसार का परित्याग किया। दोनों पिता-पुत्र सुंदर ढंग से मुनिजीवन की कठोर आराधना करने लगे। तपःस्वाध्यायनिरत सुसाधुओं के वृंद का भी उन पर गहरा असर था।

कई वर्ष बीत जाने के अनंतर एक घटना घटी।

अनेक मुनियों केसाथ पिता-पुत्र का मुनियुगल विहार कर रहा था। यह उष्णकाल था। गरमी भी अपनी

प्रचण्डता पर थी। समर्पित कठोर –व्रती मुनिवर भी यदि जरा सा भी आत्मभाव चूक जाये तो यह गरमी उनकी आत्मा में भी कोई उथलपुथल मचा दे तो अन्य की तो क्या कहें?"

बालमुनि का नाम धनशर्मा था। उन्हें आग बरसा रहे आकाश के नीचे हुए उग्र विहार के कारण असह्य प्यास लगी। बालमुनि के मुरझाये हुए मुख , कमजोर शरीर और थके हुए पैरों को देखकर पिता मुनि की आँखों से आँसु छलक पडे। कुछ आगे बढे ही थे कि आगे कलकल निनादिनी नदी को देखा और पितामुनि के अंतर में पुत्र के प्रति मोह जागृत हुआ।

अन्य मुनियों को आगे जाने दिया और धनशर्मा को नदी के पास ही रोक लिया। बाद में उन्होंने कहा :"नदी का यह बहता जल तुम पी लो ! मुझ से तुम्हारा तृषासंतप्त मुख देखा नही जा रहा।"

धनशर्मा मुनि ने तुरंत कहा :"अरे ! आपने यह क्या कह दिया ? जिसके प्रत्येक बिंदु में असंख्य जीव हैं ऐसा कच्चा पानी मैं कैसे पी सकता हूँ ? हाय ! मुझे मरकर दुर्गति में जाना पडेगा। ना...उससे तो मौत के हवाले हो जाना उत्तम है।"

पिता ने सोचा कि :"मेरी उपस्थिति में बालमुनि पानी नही पियेंगे। चलो,मैं भी आगे चला जाता हूँ। ऐसा सोचकर वे आगे निकल गये।

इस तरफ बालमुनि असह्य तृषा को सहते हुए, चित्त से जिनाज्ञा पालन की अति प्रसन्नता का अनुभव करते हुए उसी नदी के किनारे पर कालधर्म को प्राप्त हो गये और तुरंत देवलोक में देवात्मा के रूप में जन्म धारण कर लिया।

उन्होंने वहाँ से देखा कि :"मुनिगण अत्यंत तृषार्त्त हैं। अब मुझे देवात्मा के रूप में कुछ करना चाहिए।"

धरती पर आकर गोकुलों की रचना की और मुनियों को उन गोकुलों से पर्याप्त छाछ बोहरायी। तत्पश्चात् देवात्मा ने अपने पिता मुनि को छोडकर उन सारे मुनियों की क्रमशः वंदना की।

मुनियों ने ऐसा फर्क करने के लिए देवात्मा से वजह पूछी। देवात्मा ने बताया कि :"मैं बालमुनि धनशर्मा हूँ। आपको नदी किनारे पर मेरा मृतःदेह मिलेगी। आप मेरे पिता-मुनि हैं। उन्होंने मेरी बाह्य

दशा पर विचार करके –मोहाधीन होकर –मुझे नदी का कच्चा पानी पी लेने की सलाह दी। यदि मैंने तदानुसार किया होता तो मुझे कितना पापदोष लगता ? पर मैंने उनकी बात को नही माना। वे कुछ आगे बढे और कुछ ही देर में शुभध्यान में ही मैंने वहाँ प्राणत्याग कर दिये और मैं देवात्मा हुआ।

"इस पिता-मुनि की वंदना मैं इस लिए नही कर रहा कि उन्होंने मुझे मोहाधीन होकर परमात्मा की आज्ञा के विरुद्ध कार्य करने की प्रेरणा दी।

"यदि मैंने सत्वहीन होकर वह महापातक किया होता तो मुझ से मेरा मुनिजीवन कैसा बरबाद हो जाता ? और अंततः मेरी नारक आदि दुर्गति हो जाती !"

देवात्मा की बात सुनकर पिता-मुनि को अपने व्यवहार पर भारी पश्चात्ताप हुआ। उन्होंने निज गुरुदेव के पास ऐसी मोहजनित प्रेरणा करने के कारण प्रायश्चित मांगकर शुद्धि प्राप्त की।

54. करामाती गुरू

एक बुनकर था। वह भारी शराबी था।

गाँव की सारी युवतियाँ अपना दामन बचाने केलिए उससे दूर रहती थी।

दारु के दानव ने उसके तन-मन को तो निचोड ही लिया था पर उसके जीवन के सारे रसों को भी चूस लिया था। चौबीसों घण्टे नशे में चकचूर होकर पडे रहते बुनकर केप्रति सबको दयाभाव था पर सब विवश थे।

एक दिन उस गाँव में कोई मुनिराज पधारे। वहाँ कुछ दिनों के लिए स्थिरता की। उस दौरान लोकोपकार केलिए उन्होंने लोगों को देशनाएँ प्रदान की। सद्भाग्य से बुनकर का घर बगल में ही था। कोई कल्याणमित्र उसे कैसे भी करके मुनिवर की प्रथम देशना मैं ही ले आया।

और कमाल हो गया ! नशेबाज को देशना का नशा चढा । दूसरे,तीसरे,चौथे....आखिरी दिन भी वह स्वप्रेरणा से प्रेरित होकर आता रहा । मुनिवर के अंतर से मथित होकर निकलती देशना के प्रत्येक शब्द से बुनकर मनोमंथन अनुभव करता रहा ।

अंतिम दिवस की बात है । गुरुदेव विहार करने की तैयारी कर रहे थे । तब किसी ग्रामजन ने गुरुदेव से कहा :"अंगने में आकर बुनकर बैठा है और बहुत रो रहा है ।"

गुरुदेव बुनकर के पास गये । माँ की ममता की भी जहाँ कोई बिसात नही ऐसे धर्मवात्सल्य केसाथ गुरुदेव ने बुनकर की पीठ को सहलाया और स्नेहसने शब्दों से उसका स्वागत किया ।

सब से तिरस्कृत बुनकर के मन में ऐसी अनोखी मा की प्राप्ति से अकथ्य आनंद के भाव जगे ।

मुनिवर के चरण पकडकर चहुधार रोते हुए बुनकर ने कहा :" गुरुदेव ! मुझे बचा लिजिए । मैं भयानक मद्यप हूँ । मुझ से यह आदत छूटना असम्भव है । नशा करने में जरा सी भी देर होती है तो मेरी नसें खींचने लगती हैं । अब मैं क्या करूँ ? आपकी देशना सुनने के पश्चात् यह पाप छोडने केलिए मैं अत्यंत आतुर हूँ पर ऐसा करने केलिए मैं शक्तिहीन हूँ ।"

गुरुदेव ने कहा :" बुनकर ! तुम चिन्ता नही करो । मैं तुम्हें एक रास्ता दिखाता हूँ । तुम इतनी ही प्रतिज्ञा करो कि पूरे संतोष केसाथ शराब पी लेने के बाद तुम डोरी से एक गांठ लगा लेना । यह डोरी तुम हमेशा अपने पास जेब में रखना । जब शराब की तलप लगे तब उस गाँठ को छोड देना । शराबपान कर लेने के बाद तुरंत गांठ बाँध लेना । जितना समय बंधी हुई गांठ रहे तबतक शराब का त्याग । गांठ छोडकर तुम चाहे जितनी मरजी शराब पी सकते हो ।"

बुनकर ने सोचा कि मुझ सरिखे पापी को प्रतिज्ञा लेने का पुण्य कहाँ से ?यह प्रतिज्ञा तो सरल है।" बुनकर ने प्रतिज्ञा ग्रहण कर ली ।

गुरुदेव ने विहार कर लिया । बुनकर सुंदर ढंग से प्रतिज्ञा पालन करते हुए दिन बीता रहा था कि एक दिन हुआ ऐसा कि उसके मन में शराबपान करने की तलप जगी । अतः वह गांठ छोडने लगा पर गांठ ऐसी पड गई थी कि उसे खोलने की लाख कोशिशों के बाद भी नही खूल रही थी । कुछ ही क्षणों में उसकी नसें खींचने लगी । दयार्द्र हुए स्वजनों ने प्रतिज्ञा तोडकर शराब का नशा कर लेने के लिए

कहा लेकिन बुनकर ने प्रतिज्ञा भंग करने से साफ इन्कार कर दिया।

कुछ ही पलों में शुभ चिंतन में बुनकर के प्राण परलोक सिधार गये। तुरंत देवलोक में उसका देव के रूप में जन्म हुआ। शराबी देव हुआ।

तुरंत उपकारी गुरुदेव के समक्ष उपस्थित हुआ। उसने कहा :"गुरुदेव ! आपके द्वारा प्रदत्त छोटी सी प्रतिज्ञा के प्रभाव से मैं पापमुक्त हो गया परंतु आपका ऋणबद्ध हो गया। मुझे कोई काम बताइए। मुझे ऋणमुक्त होना है।"

गुरुदेव ने शत्रुंजय तीर्थ की रक्षा करने की प्रेरणा की। तीर्थरक्षा करके वह ऋणमुक्ति का आनंद अनुभव करने लगा।

55. राग का अंजाम

ललितांग और स्वयंप्रभा दोनों स्वर्ग के अनन्य प्रेमी थे। दोनों को एक दूसरे के बिना एक पल भी चलता नही था।

पर एक दिन कालपुरुष ने स्वयंप्रभा को ऊठा लिया। देवलोक में से उसका च्यवन हो गया। प्रियतमा के विरह की आग ललितांग के दैवी जीवन को प्रतिपल जला-जलाकर खाक करने लगी। "स्वयंप्रभा" के नाम का अहर्निश स्मरण करते हुए ललितांग दिव्यप्रभा के विरह में तरसता –तडपता रहा।

इस तरफ मर्त्यलोक के किसी अभागी गरीब ब्राह्मण के घर स्वयंप्रभा के जीव का अवतरण हुआ। इससे पूर्व उस गरीब ब्राह्मण के घर में एक के बाद एक छह पुत्रियों का जन्म हुआ था। घर में स्त्री के सगर्भा होते ही ब्राह्मण ने जाहिर किया कि :"यदि पुत्र ने जन्म लिया तो ठीक है अन्यथा मैं गृहत्याग

कर लूंगा।

बेचारी स्वयंप्रभा ! स्वर्ग में ही भोगसुख को भोगने की आग में थौकबंद पुण्य को खाक कर चुकी सातवीं पुत्री के रूप में उसने जन्म लिया। उसका मुख देखते ही ब्राह्मण ने गृहत्याग कर लिया।

इससे माता आदि को इस नवजात बेटी के प्रति बहुत तिरस्कार हुआ। उसका नामकरण भी नही किया गया। लोग उसे अनामिका कहने लगे।

एक दिन उसने किसी सुखसंपन्न घर में लड्डू देखे। माँ के पास लड्डू खाने की इच्छा बताई। क्रोधित हुई माँ चूल्हे में से जलती हुई लकडी उठाकर उसे मारने के लिए दौड गई और कहने लगी कि:" तुम्हें लड्डू खाने हैं ना ? यहाँ आ। मैं तुम्हें लड्डू खिलाती हूँ।"

चीखती -कलपती अनामिका को देख माँ के मन में दया का भाव जगा। लकडी को छोड दिया और पास बुलाकर कहा :"यह रस्सी लो। बन में जाकर कुछ लकडियाँ ले आओ। उन्हें बेचकर तुम्हारे लिये मैं लड्डू बना दूंगी।"

बन में लकडी काटने गई अनामिका से अभी अभी ही कैवल्य प्राप्त युगंधर नामक सर्वज्ञ भगवंत से भैंट हुई। उसने उनसे पूछा कि "भगवंत् ! क्या इस विश्व में मेरे जैसी कोई दुखिया होगी ?"

प्रभु ने कहा :"हाँ बहन ! तुम से तो बहुत सारे दु:खी लोग नरक के जीव हैं। "ऐसा कहकर उस मुनिवर ने नरक के दु:खों का वर्णन किया।

यह सुनकर संसार से विरक्त हुई अनामिका ने व्रतों का स्वीकार किया और अन्न-जल का त्याग करके उसी स्थान पर अनशन करके ध्यानस्थ हो गई।

इस तरफ देवात्मा ललितांग को किसी मित्र –देव की सहाय से स्वयंप्रभा के समाचार मिले। वह इस बन में आया। उसने अनामिका के रूप में ध्यानस्थ रही स्वयंप्रभा को देखा।

अपनी प्रियतमा की भयानक दु:खी दशा के बारे में जानकर ललितांग को गहरा सदमा पहुँचा।

जिस किसी के पुण्य के समाप्त हो जाने पर जगत में उसकी कैसा बेहाल होता है इस बात को स्वयं देखा और अनुभव किया।

स्वयंप्रभा के जीव का –अनामिका के दु:ख से उसकी आत्मा को भारी कष्ट पहुँचा । उसने उससे कहा :"मेरे लिए तुम पुन: देवलोक में जन्म धारण करो ...मुझे तुम्हारे बिना चैन आता नही है ।"

ललितांग के प्रति कामराग से अनामिका ने जितना आकर्षण अनुभव किया था ,उससे ज्यादा तो वह उसकी सज्जनता आदि गुण-वैभव से आकर्षित हुई थी ।

इसीलिए तो उसने अनशन के प्रभाव से दैवी सुख का संकल्प किया और मरकर पुन: ललितांगदेव की प्रियतमा देवी हुई ।

कैसे हैं राग के चक्कर ! कैसे हैं राग की प्रापंचिक अवस्था !

कैसे करुण हैं राग के अंजाम !

56. जो आग को छूता है उसे तो जलना ही है

सांसारिक रिश्तेदार बंधु-मुनियों से प्रतिबोधित होकर राजकुमारी सुकुमालिका ने संसार का त्याग करके दीक्षा ग्रहण की ।

पर अफसोस ! साध्वीजी का अत्यंत मोहक रूप सौंदर्य घातक सिद्ध हुआ । रूप.यौवन ,तप ,तेज और राजकुमारी सा लालन-पालन आदि सारे पुण्य तत्वों का यहाँ संगम हुआ था ।

युवकों की अतिशय असह्य परेशानी के कारण साध्वीजी अत्यंत त्रस्त थीं । या देह को बचा लिया जाये या आत्मा को । यह विकल्प निश्चित हो चूका था । साध्वीजी ने अनशन का प्रारम्भ कर दिया था । बांधव मुनि उन्हें आराधना कराने लगे ।

एक दिन सब ने अनुभव किया कि अनशन के कारण उन्होंने प्राण त्याग कर दिये हैं । उनकी देह को तत्कालीन शास्त्रीय विध्यानुसार बन में छोड दिया गया ।

शीतल पवन आदि के कारण साध्वीजी अतिमूर्च्छित अवस्था से मुक्त हुईं। उसी समय पानी की खोज में निकले हुए किसी सार्थपति के सेवक वहाँ पहुँच गये।

मात्र हड्डियाँ ही शरीर में शेष रह जाने पर भी साध्वीजी के मुख पर लावण्य की अनन्य चमक थी। सेवक अपने स्वामी को वहाँ ले गये। सार्थपति उसे निर्दोष भाव से उस स्त्री की सेवा-टहल करने के आशय से घर ले गया।

कुछ ही दिनों में सार्थपति की सेवा-टहल के परिणाम स्वरूप सुकुमालिका की देह में नया रक्त बनने लगा।

पर अफसोस ! सार्थपति द्वारा जो अपार करुणा वर्षण किया गया ,उस समय जो अंगस्पर्श आदि हुए ,उसने सुकुमालिका के रोम रोम में वासना का अगम्य और अदम्य तूफान उत्पन्न किया। सार्थपति भी उसी परिस्थिति का शिकार हुआ और एक दिन दोनों का जीवन व्यवहार पति-पत्नी के सम्बंध के रूप में शुरू हो गया।

निर्दोषिता में से सदोषिता पैदा हुई।

प्रशस्तभाव अप्रशस्त हुआ।

राग का स्थान काम ने लिया।

लक्ष्मणरेखा का उल्लंघन हो गया और किसी हतभागी क्षण में संसार का आरम्भ हुआ।

राजकुमारी सुकुमालिका !

महासाध्वी सुकुमालिका !

सार्थपत्नी सुकुमालिका !

दिन ,महिने और वर्ष बीत गये। कभी कभार सुकुमालिका को अपना अतीत याद आ जाता है और वह अत्यंत आक्रंद कर लेती है ! वह स्वयं को बहुत धिक्कारती है !

पाप के तीव्र पश्चात्ताप के पुण्य प्रभाव वश एक दिन बांधव मुनि का आगमन उसी नगर में हुआ और भिक्षार्थ निकले। मुनिजीवन के कठोर पथ पर विचरण करके कृशकाय हुए बंधु-मुनियों को बहन

पहचान नहीं पायी पर दोनों को भिक्षा लाभ प्रदान करने केलिए बुलाया।

और भिक्षा बहोरते समय ही घटस्फोट हुआ। "मैं पापिन हूँ। मेरी रक्षा कीजिए।"

सार्थपति को प्रतिबोधित कर भाई-मुनियों ने बहन का आत्मोद्धार किया। बहन सुकुमालिका ने पुनः संयम पंथ पर कदम रखे और आत्मकल्याण को प्राप्त हुईं।

57. दोषी कौन? अपराधी या अपराध का सर्जक

सम्राट चंद्रगुप्त को जैन धर्म के प्रति अत्यंत श्रद्धा थी। वे जैनसाधुओं के परम भक्त थे। उनके समय में काम विजेता स्थूलभद्रजी के गुरु संभूतिविजयजी महाराजा पूर्ण वृद्धत्व को प्राप्त कर चूके होने के कारण पाटलिपुत्र में ही स्थिरता कर रहे थे।

उस समय बारह वर्षीय अकाल ने भारत वर्ष को अपनी लपेट में ले लिया था। वृद्ध आचार्यश्री जी ने अपने अनेक शिष्यों को समुद्रतटीय देशों की दिशा में विहार करवा दिया।

कुछ साधुओं को मंत्रादि ज्ञान दान करने केलिए अपने साथ पाटलिपुत्र में रखा।

आचार्यश्री के दो शिष्य परम गुरुभक्त थे। गुरुदेव ने उन्हें अपने साथ न रखकर विहार करवा दिया था परंतु गुरुविरह असह्य लगने के कारण दोनों गुरुभक्त वापस लौटे और अध्ययन करने के लिए रूके हुए साधुओं के साथ रह गये।

इस बात की खबर होने पर भी वात्सल्यमूर्ति आचार्यश्री मौन रहे। विषम अकाल के समय में भिक्षा लाना दुरुह हो गया था और अतिशय बुद्धिकौशल एवम् लालसा रहित भाव की आवश्यकता थी। अतः वृद्धावस्था की परवाह किये बिना संभूतिविजयजी महाराजा स्वयं समग्र साधुवृंद के लिए भिक्षा लाते थे और सब में बराबर रूप से भिक्षा बाँटते थे। उसमें से जो बच जाये , वह स्वयं लेते थे। इससे उनका शरीर दिन प्रतिदिन कृश होता चला।

उन दोनों गुरुभक्त मुनियों को गुरुदेव की ऐसी दशा के लिए निमित्त हुए हैं ऐसा लगने के कारण अत्यंत दु:ख अनुभव किया। अत: उन्होंने अपने विद्याबल से अपनी भिक्षा लाने का निर्णय किया।

दूसरे दिन से –अद्दश्य अंजन से अंजित होकर –वे अद्दश्य होकर चंद्रगुप्त के भोजन के समय रोज राजमहल में जाने लगे और सम्राट के थाल से कुछ भोजन सामग्री लेने लगे।

परिणाम स्वरूप सम्राट को रोज अल्प भोजन मिलने के कारण उनका शरीर क्षीण होने लगा।इस विषय में मंत्रीश्वर चाणक्य ने चिन्तित होकर वजह पूछी तब सम्राट ने सत्य बात चाणक्य को बताई।

दूसरे ही दिन भोजनचोर को पकडने केलिए चाणक्य ने चाल चली।

भोजन के अपहरण के क्षणों में एकाएक धूप का प्रकटन हुआ। मुनियों की आँख का अंजन पिघल गया और वहाँ दोनों मुनि प्रत्यक्ष दीखने लगे।

जैनमुनियों को चोरी करते जानकर चाणक्य को अपार दु:ख हुआ।उन्हें यह कभी भी माना नही जा सके ऐसा असम्भवित लगा।

मुनियों ने अपनी सारी बात खुलकर चाणक्य के समक्ष रख दी।

दूसरे दिन संभूतिविजयजी महाराज के पास जाकर वंदनादि करके चाणक्य ने दो मुनियों के चोरी के पाप की फरियाद की।चानक्य ने कहा:" मैं पत्थर पर कमल के खिलने की बात को सच मान लूँ पर जैनमुनि राजमहल में चोरी करे ,यह मैं अपनी आँखों से देखूँ तथापि मैं मान नहीं सकता। गुरुदेव! आपके शिष्यों की ऐसी दुर्दशा ! इससे प्रजाजनों में जैनधर्म के लिए कैसा भाव जगेगा ?"

कुछ क्षण शांत रहकर गुरुदेव ने कहा :"मंत्रीश्वर ! मुनियों ने भोजन की चोरी की,यह बात यथार्थ है। मैं उनका बचाव कदापि नहीं कर सकता लेकिन मैं एक बात पूछना चाहूँगा कि मुनियों को इस हद तक जाना पडे ऐसी स्थिति का निर्मान हो जाये वहाँ तक आप जैसे प्रजाहितकारी लोग बेखबर रहे थे-यह बात भी उतनी ही सच्ची है ना ! यदि ऐसा है तो आप भी कितने अपराधी हुए ?"

गुरुदेव की बात सुनकर चाणक्य को अपने उपेक्षा दोष का अहसास हुआ। उसने तुरंत क्षमायाचना की और दूसरे ही दिन से उचित कार्यव्यवस्था को अमली जामा पहनाया ।

58. हा प्रायश्चित विपुल झरना....

उसका नाम था दुर्धर ।

वह ब्राह्मणपुत्र था । गृहकलह के कारण कम उम्रह में ही उसने गृहत्याग कर दिया था । उसे बन में भटकते हुए देखकर तथा उसकी कदावर देह को देखकर चोरों ने उसे पल्ली का स्वामी बना दिया ।

लूटपाट ही उसका जीवन हो गया था । न्याय-नीति इत्यादि में उसका विश्वास नही था । दया-माया का तो दूर से भी उसका कोई नाता नही था । उसके द्दढ प्रहारों के कारण उसे लोग "द्दढ प्रहारी" कहते थे ।

एकदा उसने किसी गाँव पर डाका डाला । लूट का माल-सामान एकत्र हो रहा था तब उस समय भूख के कारण उसके किसी साथी ने किसी झोंपडे में प्रवेश किया ।

अति आनंद –उल्लास केसाथ खीर खाने की तैयारी में लगे बच्चों की थाली झपट मारकर ऊठा ली । वह तुरंत गर्म-गर्म खीर खा गया ।

कूएँ से वापस लौटी माँ ने इन रोते -बीलखते बच्चों से इस बात को जब जाना तब उसे बहुत गुस्सा आया । वह बोल ऊठी :"अरे ओ पापिओ ! तुम लोगों ने मासूम बच्चों की खीर तक को नही छोडा?"

गालियाँ सुनाती हुई वह सिवान पर गई । उसका पति भी उसके पीछे गया । उसके पीछे उसके बच्चे भी रोते हुए जाने लगे ।

घोडे पर सवार होकर मालसामान तथा अपने साथियों केसाथ रवाना होने की तैयारी में लगे द्दढप्रहारी पर उस औरत ने सीधा धावा बोल दिया: "अरे ओ कालमुखो ! मेरे बच्चों की खीर तक को नही छोडा , आप लोगों ने ओ क्रूर लूटेरों ! "

जिसने अपमान का एक भी शब्द कभी सुना न हो ऐसा यह द्दढप्रहारी इन शब्दों से एक ही क्षण में आपाद् मस्तक आगबबुला हो गया । अपनी कमर से तलवार खींचकर उस औरत के पेट पर चला दी ।

हाय ! वह औरत सगर्भा थी । दो-दो हत्याएँ हुई- भृणहत्या और स्त्री हत्या । उसी वक्त गाय बीच में आ गई ! उसका भी वध कर दिया । बच्चों का बाप कुछ कहे-बोले उससे पहले उसे भी मौत के घाट उतार दिया !

लेकिन औरत के पेट से बाहर पडे गर्भ को वह कालमुख केलिए देखना असह्य हो गया । उसके दिल में घमासान मच गया । वह घोर आक्रंद करने लगा । पश्चात्ताप की पावक ज्वालाओं से उसका रोम-रोम जलने लगा ।

वह बन की ओर भागा । किसी मुनिवर से भेंट हुई । उसने उनसे पूछा कि "क्या मैं अपनी पापी आत्मा को मार डालूँ ? "

गंभीर घोष में मुनिराज ने कहा :" काजल घुले जल से मैला वस्त्र कभी स्वच्छ नही हो सकता भला ! घी खाने से बदहजमी का निवारण नही हो सकता ।"

"सर्व संग का त्याग करो । साधू बनो । " मुनि ने कहा ।

और बटमार मुनि हुआ ! ना ...बटमार आंतरशत्रु के विरुद्ध संग्राम करनेवाला डकैत ही बना रहा।

चार -चार हत्याओं रूपी हुए घोर पाप कर्म की वेदना उसके रोम-रोम को दंशित कर रही थी ।

उसने प्रतिज्ञा ली कि जिस दिन मुझे अपने पापों का स्मरण होगा ,उस दिन मेरे लिये अन्न-जल का त्याग होगा ।

मैं इसी क्षेत्र में रहूँगा , जिससे लोग मेरी बहुत मारपीट करे । ऐसा होने पर ही मेरे दुष्ट कर्मों का अंत होगा ।

मुनिवर हुए दृढप्रहरी दूसरे दिन उस क्षेत्र में भिक्षा लेने केलिए गये .उनके कानों ने सुना ; "इस पापी डकैत ने मेरे पिता की हत्या कर दी है ! अरे इसने मेरे पुत्र का खून कर दिया है ! अरे ! इसने मेरे भाई की हत्या कर दी है ! "

रोज हत्या का स्मरण ! रोज अन्न-जल का त्याग ! भिक्षा तो दूर की बात है पर लोग तो कुत्ते को मार रहे हों ऐसे मारपीट करने लगे ।

ऐसे क्षणों में मुनि का मन कहता था :"कैसे उपकारी हैं ये लोग ? मैंने इनके साथ कितना बारी अपकार किया है तथापि मेरे कर्मों का क्षय कराकर मुझे सद्गति कीओर ले जा रहे हैं । अरे ! अपने पुण्य का क्षय करके भी मुझे पुण्य का पाथेय प्रदान करा रहे हैं!

"प्रणाम ! प्रणाम ! इन उपकारियों को !"

असह्य मारपीट को अति प्रसन्नतापूर्वक सहते जाने के प्रभाव से महात्मा दृढप्रहारी छः महिनों में परमात्मपद को प्राप्त हो गये ।

59. उद्धत शिष्य और महान गुरू

एक ही स्थान में रहने से अपने शिष्यों का जीवन दुषित हो जायेगा । ऐसे भय वश अति वृद्ध हुए संगम नामक आचार्य ने शिष्यों का अनेक प्रदेशों में विहार करवाया औरउन्होंने अकेले कोल्लाकपुर में स्थिरवास किया ।

उत्तम कोटि के चारित्रपालन से प्रभावित हुआ कोई नगर देवता उनकी सेवा करने लगा ।

एकदा आचार्यश्री का दत्त नामक एक उद्धत शिष्य वहाँ आ गया । "अपने गुरु एक ही स्थान पर रह रहे हैं । अतः वे शिथिलाचारी हैं । " ऐसा सोचकर दत्त मुनि ने गुरु केसाथ न रहते हुए अलग निवास किया ।

भिक्षा का वक्त होने पर गुरु स्वयं शिष्य के निवास पर गये । उन्होंने उससे कहा :"वत्स ! मेरे साथ भिक्षा लेने चलो ...तुम इस नगर के घरों को जानते-पहचानते नही हो । अतः मैं तुम्हें घर दिखाऊँगा ।"

गुरु के साथ दत्त मुनि भिक्षार्थ गये लेकिन सामान्य स्थिति के घरों से दत्त मुनि को मनभावन भिक्षा नही मिली । इसलिए वह व्याकुलता अनुभव करने लगे । उनका मनोभाव समझकर गुरु उसे सेठ

के घर ले गये। सेठ के पुत्र पर रेवती नामक देवी ने कब्जा कर लिया था। अतः वह लगातार रोये जा रहा था।

अच्छी भिक्षा पाने केलिए ही गुरु ने अपनी विद्या शक्ति का प्रयोग कर के पुत्र को युक्तिपूर्वक चूप कर दिया। पुत्र की माँ ने बहुत खुश होकर मिष्टान्न बोहराया।

दत्त मुनि को गुरु पर बहुत गुस्सा आया। उसने सोचा कि :"मुझे जान-बूझकर परेशान करने के लिए सारे गाँव में भटकाकर मेरे गुरु आखिर में यहाँ ले आये।"

संध्या वेला में प्रतिक्रमण की क्रिया करने से पूर्व गुरु ने शिष्य से कहा :" वत्स ! आज उस सेठ के यहाँ से मैंने जो मिष्टान्न की भिक्षा दिलायी है ,वह शास्त्रनीति के अनुसार दोषपूर्ण है। अतः उसका प्रायश्चित कर लेना आवश्यक है। तुम्हारी खुशी के लिये ही मुझे ऐसा करना पडा है।

इन शब्दों को सुनकर अंदर से कब का उत्तेजित हो रहा शिष्य यकायक ऊबल पडा। उसने गुरु को खुल्लंखुल्ला कह दिया कि : "बैठिये !...मुझे प्रायश्चित की बातें समझाने चले हैं , आपका जीवन तो बेठिकाने है।"

गंभीरता के अथाह सागर समान गुरुदेव ऐसे असह्य वचन सुनकर शांत रहे पर क्षेत्रदेवता शिष्य के प्रति कुपित हो गये। उन्होंने भयानक आंधी फैलायी। आकाश में घोर अंधकार फैला दिया और भयानक आवाजें पैदा की।

अनचिते संकट से शिष्य दत्त अत्यंत घबडा गया : "गुरुदेव ! गुरुदेव ! आप कहाँ हैं ? मुझे कुछ दिखता नही है। बहुत डर लग रहा है। "दत्त ने एक ही साँस में चीखते हुए कहा।"

वात्सल्यमूर्ति गुरु ने अपनी शक्ति से एक उंगली को तेजोमय बनाकर ऊपर ऊठाया। उन्होंने कहा : "वत्स ! इस तेज की दिशा में चले आओ। मैं यहीं हूँ।"

अग्नि -तेज देखकर शिष्य ने मन ही मन कहा :" मेरे गुरु कितने शिथिल हो गये हैं कि वे अग्नि का भी उपयोग करते हैं।"

शिष्य के मन के इस पापी विचार को भाँपकर क्षेत्रदेव अति कुपित हुए। उन्होंने विचार किया कि जो गुरु उत्तम कोटि के चारित्र के आराधक हैं ,ऐसे उद्धत शिष्य के प्रति भी वात्सल्य गंगा बहा रहे

हैं ,ऐसे गुरु के प्रति पल दोष दर्शन करनेवाला शिष्य कितना अधम है।

उन्होंने प्रकट होकर दत्त मुनि को सख्त ऊलाहना दी। सद्भाग्य से दत्त को अपनी गलतियाँ समझ में आई। उसने गुरु से अंत:करणपूर्वक क्षमा याचना की।

60. धन तो आपके पास ही है

एक फकीर था। उसने एकबार स्वप्न में देखा कि अपनी झोंपडी से कुछ दूरी पर एक टेकरी है। उस टेकरी पर पेड है और उस पेड के नीचे विपुल मात्रा में जवाहिरात दबा पडा है।

सुबह ऊठकर वह टेकरी की दिशा में दौडा। हकीकत में सपने में देखे अनुसार वहाँ पेड था लेकिन अफसोस ! वहाँ कोई पुलिस गश्त लगा रहा था। कब पुलिस हट जाये और कब जवाहिरात बाहर निकाल लूं। इसी विचार में फकीर वहाँ चक्कर काटता रहा।

पर जब घंटों पर्यंत पुलिस वहाँ से हटी ही नही तब भोले फकीर ने स्वप्न की सारी बात पुलिस को बता दी।

पुलिस ने उससे कहा कि मैंने भी आज एक ऐसा स्वप्न देखा है कि यहाँ से कुछ दूरी पर एक झोंपडी है , वहाँ फकीर रहता है और उस फकीर के बीछौने केनीचे विपुल मात्रा में जवाहिरात पडा हुआ है।

यह सुनकर फकीर अपनी झोंपडी कीओर दौड गया। उसने बिछौने के नीचे की जमीन में खुदाई की तो उसमें से विपुल मात्रा में जवाहिरात निकला।

सुख हमारे पास ही होते हुए भी अन्त्र खोजने केलिए निकल पडना मूर्खता है। ऐसा मत समझना कि सुख की सामग्रियाँ बाहर ही सुंदर हैं। घर में जो है ,वही सुंदर है।

61. हे पाप! तुम्हारा जन्म मन से....

एक विधवा थी। वह महाजनी का व्यवसाय करती थी। उसके घर के सामने एक युवक रहता था। महाजनी में वह बहुत व्याज लेनेवाली उस विधवा के प्रति उस युवा को बहुत धिक्कार भाव पैदा हो गया। वह सोचने लगा कि "क्या इस औरत को यमसदन पहुँचा दे ऐसा अभी तक विश्व में कोई जन्मा नही है। कुछ दिन बाद उसके मन में ऐसा विचार आने लगा कि "क्या इस देश में भी ऐसा कोई नही है ? कुछ दिन बाद वह पुनः सोचने लगा कि "क्या इस गाँव में भी नही है ?"

आखिरकार उसके मन में एक दिन विचार आया कि "मैं खुद ही हत्या क्यों न कर दूँ ?" और कोई काम खोजकर वह विधवा के पास गया और उस पर हमला कर दिया। उसका गला दबोचकर उसे मौत की नींद सुला दिया। हे पाप ! तुम्हारा जन्म मन में ही होता है। जो व्यक्ति पाप को मन में आने से रोक देता है ,उसकी वाणी या काया में पाप का कभी प्रवेश नही होता।

62. अन्य द्वारा की गई निंदा से व्यथित न हो!

एक दिन रमेश ने पंकज को टेलिफोन किया और किसी कारण से वह उससे गालीगलौज करने लगा। फोन के दो मिनट पूरे हो गये पर पंकज ने उसे कोई जवाब नही दिया। रमेश ने पूछा :" आप कौन हैं ? "पंकज या और कोई ? फिरभी पंकज कुछ बोला नही। गाली गलौज आगे बढा। रमेश ने पूरे छह मिनट तक गालियाँ दी। अंततः वह थक गया। उसने पूछा कि "भाई ! पंकज ही हैं या और कोई ?क्यों बोल नही रहे ?"

तब पंकज ने जवाब दिया : "रोंग नम्बर" और पंकज ने रीसीवर रख दिया।

जब कोई आपकी निंदा करे तब आप अपने मन में मात्र इतना ही कहिए कि "रोंग नम्बर" और वह निंदा आपके मन पर कोई विघातक असर छोडेगा नही।

63. हाय गरीबी

एक सुप्रसिद्ध धार्मिक शहर था। एकबार वहाँ एक महाराज साहब पधारे। कुछ दिनों केलिए उनकी वहाँ स्थिरता थी। रोज सुबह एक साधु भिक्षा केलिए निकलते थे। घर दिखाने केलिए एक छोटा लडका उनके साथ जाता था। विशेष रूप से अपना घर दिखाने केलिए ही वह उनके साथ घूमता था। पाँच-सात दिन बाद उस लडके ने महाराज साहब से पूछा कि :"साहब ,आप कब विहार करेंगे ?"

छोटे से बालक के सवाल से आश्चर्य चकित हुए साधु ने प्रत्युत्तर में कहा :"भाई ! तुम्हें ऐसा क्यों सवाल पूछना पडा ?" बालक ने कहा :"आप जब तक हमारे गाँव में रूकेंगे तब तक हमारी माँ हम सभी भाई-बहनों के हिस्से का दूध आपको ही बोहरायेंगी। उसने हम सबको ऐसा समझा रखा है कि आप के जाने केबाद तुम सब को अपने अपने हिस्से का दूध मिलेगा।"

बालक की यह बात सुनकर साधु की आँखों में आँसु उमड पडे।

64. क्या अस्पतालें खतरनाक कहीं जा सकती हैं?

मुम्बई के उपनगर में एक अस्पताल है। बहुत बडा अस्पताल कहा जा सकता है। एक दिन अस्पताल के कर्मचारियों ने हडताल कर दी। लम्बे समय तक हडताल चलती रही। पूरे तीन महिने हडताल चली। अंत में समाधान हो गया। लोग अपने अपने काम पर चढ गये। अस्पताल के उन तीन महिनों के दरमियान उपनगर में मृत्यु की घटनाएँ कम हो जाने की जानकारी मिली। इससे अखबारों ने भारी ऊहापोह मचाया कि :"क्या दवाइयों के कारण मृत्यु की तादाद बढ गई होगी ? क्या दवाइयाँ ही बीमारियाँ पैदा करती होंगी ? और डॉक्टरों की जेबें भरने का काम करती होंगी। जब अस्पताल बंद रहा तब मृत्यु का परिमाण क्यों घट गया !

65. मूल्य पाण्डित्य का नहीं करूणा का है

वे तीन विद्यार्थी नालंदा विद्यापीठ से थे। एकबार उन सब ने घर जाने केलिए कुछ दिनों की छुट्टी मांगी। कुलपति ने छुट्टी प्रदान की और तीनों ने घर की राह ली। कुलपति छोटे रास्ते की पगडंडी पर चलकर आगे निकल गये और रास्ते में काँटे की आड करके निकट के किसी झोंपडे में जाकर छिप गये।

जब ये विद्यार्थी कांटों की आड के पास पहुँचे तब संध्याकाल हो गया था।अतः जल्दी से आगे जाने केलिए पहला विद्यार्थी कांटे की आड को कूदकर आगे बढ गया।

दूसरे ने राजमार्ग छोडकर चक्कर काटना पसंद किया और तीसरा वहाँ खडे होकर काँटों की आड हटाने लगा।

उसे देखकर आगे निकले हुए दो विद्यार्थियों ने पूछा कि :"तुम यह क्या कर रहे हो?"

अंधेरा हो जायेगा तो फिर करेगा क्या ?" उसने जवाब देते हुए कहा कि :"भले ही अंधेरा हो जाये पर यदि अंधेरे के कारण किसी को कांटे गड गये तो ? तुम लोग जाओ। मैं तो यह काम खत्म करके ही आगे बढूँगा।

"झोंपडे में से बाहर आकर गुरु ने उसे शाबाशी दी और कहा:"तुम वापस चलो। मैं तुम्हें अपना सारा ज्ञान देना चाहता हूँ क्योंकि तुम्हारे पास करुणाशील हृदय है।"

66. ज्ञान की पात्रता, आर्द्र हृदय

वह रसायण विद्या का ज्ञाता महान दार्शनिक नागार्जुन था। वह एक उत्तम शिष्य की खोज में था। एकदा उसके पास दो युवक शिष्यत्व पाने केलिए गये। शिष्य के रूप में योग्यता की परख करने केलिए नागार्जन ने उनको रसायण देकर चौबीस घण्टे में तैयार कर देने केलिए कहा। दोनों अपने अपने स्थान पर जाकर काम में व्यस्त हो गये। एक युवा ने समय मर्यादा में रसायण तैयार कर दिया।जबकि दूसरे ने कुछ भी किया नही। नागार्जुन ने उसकी वजह पूछी। विद्यार्थी ने कहा :"गुरुदेव ! मुझे रास्ते मैं एक भिखारी मिल गया। वह अंतिम सांसें ले रहा था। उसे बचाने में मेरा सारा वक्त बीत गया लेकिन मुझे इस बात का तनिक भी रंज नही है। भले ही मैं रसायण नही बना सका पर एक मर रहे इन्सान कि जिंदगी को अवश्य बचा पाया हूँ।"

.....और नागार्जुन ने उसे अपने शिष्य के रूप में स्वीकार किया।

67. अन्य का भी विचार किया जाये

जब स्वामी विवेकानंद विदेश में धर्म प्रचार केलिए भारत से बिदा हो रहे थे तब उनकी माता ने उनमें प्रचार करने की योग्यता की कसौटी करने केलिए अपने घर बुलाया।

स्वामीजी माता के घर गये। माता ने थाली में अलग अलग फल दिये और उन्हें सुधारने केलिए छुरी दी। फल खाने के बाद माताजी ने छुरी वापस मांगी तब स्वामीजी ने छुरी का हैंडलवाला हिस्सा माता की तरफ धरकर माता को छुरी वापस लौटायी।

माताजी ने स्वामी से कहा कि :"आप मेरी परीक्षा में उत्तिर्ण हुए हैं।"

स्वामीजी ने पूछा: "आपने कैसे परीक्षा ली?" माता ने कहा :"छुरी वापस लौटाते समय छुरी मुझे लग न जाये ऐसा विचार करके आपने मुझे लकडी के हैंडलवाला भाग दिया। व्यक्ति अन्य की चिंता करनेवाला ही जगत को उपदेश देने योग्य है।"

68. क्या वानरों से भी अधम हैं नर?

एक दिन एक पेड के नीचे एक किशोर बैठा हुआ था। उसके साथ उसका मित्र भी बैठा हुआ था। कुछ देर बाद किशोर ने मित्र को बंदर युगल दिखाया और कहा :"डार्विन का कहना है-हमारे पूर्वज ऐसे वानर थे।"

यह सुनकर बंदरिया ने बंदर से कहा :"अरे ! क्या मनुष्य हमारे वंशज हैं ?"क्या हम कभी उनके जैसे नीच,दुराचारी,धोखेबाज, विश्वासघाती थे ? यदि नही तो इन लोगों को हमारे वंशज कहलाने का क्या अधिकार है ?"

हाय ! आजका नर वानर कहलाने के योग्य भी नही रहा ?"

69. बाहर करूणा, भीतर कठोरता

एक काने(एकाक्ष) व्यक्ति ने अपनी कानी आँख में नकली आँख बिठाकर कमाल कर दिया था। कोई बता ही नही पाये कि कौन सी आँख नकली है और कौन सी असली।

एक दिन उसने दस पैसे का एक सिक्का एक भिखारी को देकर पूछा कि :"बता ! मेरी नकली आँख कौन सी है और असली आँख कौन सी है? क्या तुम बता सकते हो?"

उस भिखारी ने तुरंत जो नकली आँख थी,उसे बता दिया। वह तो दंग रह गया। उसने पूछा :"अरे भाई ! तुम्हें कैसे पता चला ?"

भिखारी ने कहा : "आपकी जिस आँख से मेरे ऊपर जो करुणा बरस रही थी,उसे मैंने असली आँख समझ लिया और दूसरी आँख को नकली बता दिया।"

जहाँ करुणा है,वहाँ मानव है। जिस में कठोरता हो उसे मानव कैसे कह सकते हैं ? अरे ! उसे तो पशु भी अपने साथ रखने केलिए राजी नही है।

70. धर्म से मांगने की मूर्खता क्यों कर रहे हों?

एक डॉक्टर ने धनिक औरत की खूब ऊँची सेवा करने केसाथ ओपरेशन किया। डॉक्टर ने उस औरत को ओपरेशन का रू.३२००/- का बील दिया।

दूसरे दिन धनिक औरत रू.३२००/- तथा एक पैकेट लेकर गई। उसने डॉक्टर से कहा :" या तो ये बत्तीससौ रूपये लो या यह पैकेट लो।" इसमें से कम या ज्यादा जो भी निकले ,वह आपका। डॉक्टर ने घर जाकर अनेकों से सलाह मांगी। सब की एक ही सलाह थी कि आप बील के बत्तीस सौ रूपये ले लिजिए। पता नही पैकेट से क्या निकलेगा ?"और डॉक्टर ने बत्तीससौ रूपये मांगे और उस औरत ने वह धनराशि डॉक्टर को दे दी।

तत्पश्चात् डॉक्टर ने उस औरत से उस पैकेट को खोलने केलिए बिनती की। औरत ने पैकेट खोला तो उस पैकेट से पूरे पचासहजार रूपये निकले।

उस डॉक्टर को पचासहजार रूपये गँवाने का भारी अफसोस हुआ। धर्म से मांगने की मूर्खता कभी भी कोई न करे!

71. संतों की खुमारी

एक संत के पास एक धनवान ने सोनामुहरों की थैली भेंट रख दी। सबको दिखाने केलिए वह सोनामुहरों की थैली को ऐसे रखा जिससे उसमें से मुहरों की खनक आ सके। इस उस धनिक की हरकत से वहाँ बैठे संतों के भक्तों को आश्चर्य हुआ और वाह वाही करने लगे लेकिन संत तो मौन ही रहे। कुछ देर बाद अकुलाये हुए उस धनिक ने संत से पूछा :" मेरी इस दान प्रवृत्ति की आप अनुमोदना क्यों नही कर रहे ? आप मुझे धन्यवाद भी नही दे रहे?

संत ने कहा "भला ! तुम्हें धन्यवाद तो मेरा करना चाहिए मैं किसी से कुछ भी स्वीकार नही करता। मैंने यह धन स्वीकार करके तुम्हारे पाप के भार को हल्का कर दिया है।"

72. कलिकाल साधुत्व

जब आर्यरक्षितसूरिश्वरजी के ज्ञान पर आफरीन होकर इन्द्र स्वर्ग में जाने की तैयारी कर रहे इन्द्र से आर्यरक्षितजी ने कहा: "भाई ! तुम यहाँ कुछ देर केलिए रूक जाओ ,जिससे भक्ति केलिए गये हुए मेरे साधु वापस लौटकर तुम्हें प्रत्यक्ष रूप से देख सके और स्वर्ग आदि पदार्थों केप्रति उनकी श्रद्धा और मजबूत हो जाये।"

इन्द्र ने कहा :"भगवंत ! अल्पसत्वाः युष्माकं साधवः माम द्दष्टवा करिष्यंन्ति !" हे भगवंत ! कलिकाल के साधुओं का सत्व क्या कम होता है ! शास्त्र में श्रद्धा वृद्धि करने के बदले मुझे देखकर मेरे जैसे होने की उनकी ईच्छा बलवती हो जाये तो ?"

यह बात सुनकर सूरिजी चूप हो गये।

स्वयं के आये हुए होने के संकेत के रूप में मात्र मुख्य द्वार को बदलकर इन्द्र वहाँ से बिदा हो लिये।

73. आइन्स्टाईन का पश्चात्ताप

विश्व के सवोत्कृष्ट वैज्ञानिक प्रमाणित हुए आइन्स्टाईन ! वैज्ञानिक जिनकी मृत्यु के बाद खोपडी का रिसर्च कर रहे हैं ,वे जानना चाहते हैं कि इस खोपडी में ऐसा तो क्या था कि E=MC2 नामक विश्व का सर्वोत्कृष्ट समीकरण प्रकट हुआ। आइन्स्टाईन के जीवनकाल में किसी ने उनसे पूछा :"यदि हकीकत में पुनर्जन्म जैसी कोई चीज है तो आप कहाँ जन्म लेना पसंद करेंगे ?"

आइन्स्टाईन ने कहा : " किसी प्लम्बर के घर क्योंकि मैं किसी वैज्ञानिक के घर जन्म लेना नही चाहता।

मेरे द्वारा आविष्कृत अणु के आविष्कार ने इस विंश्व को संहारलीला के भयानक ताण्डव पर बिठा दिया है।"आइन्स्टाईन की यह बात सुनकर प्रश्नकर्ता विज्ञान की संहारकता पर सोचने लगे।

74. इच्छा संसार की और मांग मोक्ष की

कोई भिखारी बोल रहा था :"दो दिन से भूखा हूँ ,कोई मुझे पैसा दीजिए। भगवान तुम्हारा भला करेगा।"

रास्ते पर खडे भिखारी को किसी ने नजदीक के किसी होटेल में ले जाकर भरपेट खाना खिला दिया लेकिन इस भिखारी के मुख पर उस भाई के द्वारा कृत उपकार के प्रति कृतज्ञता का भाव नजर नही आया। इससे वह भाई भी सोचने लगे।

वहाँ भिखारी ने अपने दोस्त से कहा :"अरे ! क्या बताऊँ ! पैसे लेकर मुझे तो सिनेमा देखना था पर उस आदमी ने मुझे खाना खिला दिया।"

भिखारी के ये शब्द सुनकर वह दानवीर दंग रह गये।

भगवान से हम मांगते हैं मोक्ष पर हम तो संसार ही चाहते हैं !

75. यह धरती है राणा प्रताप की

वह ट्रेईन अपनी मंजिल की दिशा में दौडती हुई एक स्टेशन पर आकर रूकी। मात्र आधे मिनट के लिए रूकी। किसी ने २० पैसे के केले किसी गरीब से खरीदे और चवन्नी दी। वह गरीब आदमी सिक्का भुनाकर पांच पैसे लौटा रहा था कि गाडी चलने लगी। दौडती हुई गाडी में वह लडका चढ गया और बोला :"सेठजी !

ये आपके पांच पैसे ले लीजिए।"

पैसे लौटाने में मिली सफलता से भारी प्रसन्नता अनुभव करते हुए वह लडका सेठ को सलाम करके चलती गाडी से उतर गया। शहरी श्रीमंत सेठ को अपनी विचित्र जिंदगी के प्रति नफरत हुई। उसके मुँह से ये शब्द निकल पडे :"यह धरती है राणा प्रताप की ।"

76. नजर नजर में फर्क

आम्रफल से लचित आम्रवृक्ष को देखकर एक गुरु ने अपने पहले शिष्य से पूछा :" आम्रवृक्ष में तुम्हें क्या दिखाई देता है ?" उसने कहा : "गुरुजी ! मार खाकर भी आम्रवृक्ष तो फल ही देता है। मनुष्य इस आम्रवृक्ष से इतना सिख ले तो... ?"

गुरुजी ने दूसरे शिष्य से पूछा :"कहो ,आम्रवृक्ष में तुम्हें क्या दिखता है ?" तब उसने जवाब दिया कि "गुरुजी आम्रवृक्ष यह सिखाता है कि जगत में यदि आप मारेंगे तो ही फल पा सकोगे। किसी को मारे बिना कुछ हासिल नही होता। डंडाबाजी तो करनी ही पडती है।"

नजर नजर में कितना अंतर है ! बात तो दोनों की सच ही है पर दृष्टिकोण तो एक ही सही है।

77. पैसे से धर्म या उसके त्याग से

अपने गुरुदेव हमेशा अपरिग्रह विषयक बात करते थे। एक बार शिष्य अपने गुरु के साथ नौकाविहार करने केलिए निकला लेकिन नाववाले ने पैसे मांगे। गुरु ने कहा कि मेरे पास तो कुछ भी नही है।

तब शिष्य ने दस पैसे के दो सिक्के दिये। शिष्य ने रौब जमाते हुए कहा :"गुरुदेव ! अब आप अपरिग्रह की बात बंद कीजिए। मेरे पास परिग्रह था तो काम हुआ।"

गुरु ने कहा :"भाई ! नाव में बैठने का काम परिग्रह से नही हुआ बल्कि परिग्रह के त्याग से हुआ है "और ये शब्द सुनकर शिष्य ने अपने धन का गर्व छोड दिया तथा गुरु के भावपूर्वक नमस्कार करके अपनी भूल केलिए क्षमा-याचना की।

78. विद्यालयों में हो रहे कुसंग से बरबादी

बादशाह अहमदशाह ने अहमदाबाद नगरी की रचना करके उसकी सुरक्षा केलिए किला चुनवाना शुरू किया। किला दिवस दरमियान चुना जाता था और रात्रि वेला में जमींदोज हो जाता था। इसके कारणों की पडताल में किसी ने कहा :"किले केपास माणेकनाथ साधु बैठा हुआ है। उसे प्रसन्न किया जाये तो इस आफत से हम मुक्त हो सकते हैं।"

पदयात्रा करके बादशाह माणेकनाथ से मिलने गया। उस समय वह साधु चटाई बुन रहा था। साधु ने कहा :" दिवस दरमियान चटाई बुनता हूँ ,इसलिए आपके किले की चुनाई होती है लेकिन रात्रि के दौरान चटाई को खोल देता हूँ। इसलिए तुम्हारा किला गिर जाता है। - यदि तुम मेरा नाम अमर कर दो तो ही मैं तुम्हारे किले के निर्माणकार्य को तकलीफ से मुक्त कर दूँ।"

बादशाह ने साधु की बात का स्वीकार किया और वहाँ के चौक का नाम माणेकचौक रखा गया।

और तत्पश्चात् किला बिना किसी रूकावट के फटाफट निर्मित हो गया।

घर में मातापिता बालकों में सुंदर संस्कार रूप दीवार की चुनाई करते हैं फिरभी जब वे शिक्षा पाने केलिए विद्यालयों में जाते हैं ,वहाँ कुसंग से जो कुसंस्कार पाते हैं,उनके दुष्प्रभाव से अच्छे संस्कार पुनः नष्ट हो जाते हैं। जहाँ भारत सरकार ही बालकों को विदेशी पद्धतिवाला शिक्षारूप जहर पिलाना चाहती हो वहाँ प्रजा बेचारी करे तो भी क्या ?

79. साधुभक्ति की अनोंखी भूख

कहा जाता है कि मुम्बई तो मोहमयी नगरी है। जहाँ मोहराजा का साम्राज्य फैला हो ,वहाँ धर्मराजा की परछाई भी कैसे दिखाई दे ?

परंतु हवाओं ने अब रूख बदल दिया है। साधुओं के सत्संग के प्रभाव से उसी मोहमयी नगरी में

मशगूल माने जा रहे वालकेश्वर जैसे क्षेत्र में भी अनेक धर्मात्माओं के दर्शन होते हैं।

जिन्होंने पहले धर्म प्राप्त नही किया था ऐसे एक भाई ने ज्यादा पैसा लगाकर एक एपार्टमेंट के आठवें माले पर एक फ्लेट खरीदा परंतु साधुओं की संगति के कारण जब धर्म की समझ प्राप्त की तब उसकी समझ में आया कि जैसे जैसे ऊपर जायें वैसे वैसे फ्लेट की कीमत ऊँची नही होनी चाहिए वरन् कम होनी चाहिये। क्योंकि ज्यादा ऊँचाईवाले फ्लेट में साधु भगवंतो की गोचरी-पानी और दर्शन का लाभ भी कहाँ मिलता है ?जबकि नीचे वाले फ्लेटवालों को इन सब का उत्तम लाभ मिलता है। अतः उस भाई ने नीचेवाले फ्लेटवाला यदि अपने फ्लेट की अदलाबदली करने को उत्सुक हो तो दो लाख रूपये ज्यादा देने की तत्परता दिखाकर नीचेवाला फ्लेट खरीद लिया।

कैसी सुंदर परिवर्तन की हवा.... !

कैसी उत्तम प्रकार की साधुभक्ति की भूख !

80. दयालु ईश्वरचंद्र

ईश्वरचंद्र विद्यासागर बंगाल के प्रतिभासंपन्न व्यक्ति माने जाते थे। एक दिन राह चलते एक उदास व्यक्ति को उन्होंने देखा। पूछने पर पता चला कि उसकी बेटी की शादी केलिए लिया हुआ कर्ज वह अबतक अदा नही कर पाया है। अतः लेनदारों ने उसके खिलाफ अदालत में मुकदमा दाखिल किया था। आज उसे अदालत में हाजिर होना था परंतु अब उसके पास कर्ज लौटाने केलिए पर्याप्त धन बचा नही था।

ईश्वरचंद्र ने लेनदारों के नाम-पते ले लिये। जब वह व्यक्ति अदालत में हाजिर हुआ तब उसे पता चला कि सारा कर्ज अदा हो चुका है। अतः मुकदमा वापस ले लिया गया है। कहना आवश्यक नही कि यह राशि किसने भरपाई की होगी ?

81. कर्तव्यनिष्ठा

लोकमान्य तिलक हमेशा अपने कर्तव्य में व्यस्त रहते थे। कर्तव्यपालन के वे कट्टर पक्षधर थे। एकबार उनकी कसौटी हो जाये ऐसा एक प्रसंग घट गया। डॉक्टरों ने कहा कि :"उनका बेटा बहुत बीमार है ,कल क्या होगा यह कहा नही जा सकता।" लोकमान्य तिलक ने यह जानने के बाद भी ऑफिस जाने का निर्णय किया। उन्होंने डॉक्टरों से कहा :"बेटा बहुत बीमार है तो उसका इलाज भी आप ही को करना है। जो कुछ होगा वह ईश्वरेच्छा के अधीन ही होगा। यह बात न तो आपके वश की है और न मेरे। ऐसी स्थिति में घर में बैठे रहना भी ठीक नही है।"

और तिलक साहब ओफिस गये। कामकाज निपटाकर घर जाने की तैयारी कर ही रहे थे कि पुत्र के देहविलय की खबर मिली तब तनिक भी अधीर हुए बिना घर लौटकर स्मशान में हाजिर रहे।

82. क्या सौबत का असर होता हैं?

महाराष्ट्र में हुए ज्ञानेश्वर तीव्र मेधावी थे। उनका ज्ञानप्रधान योग था पर जीवन में भक्तियोग बराबर जम नही रहा ,इस बात का उन्हें भारी दुःख था। अतः एकदा वे नामदेव नामक एक संत के पास गये और उनके साथ यात्रा में जुडने केलिए आज्ञा मांगी।

नामदेव ने कहा:"आप बैठिये ,मैं अंदर जाकर भगवान से आज्ञा प्राप्त कर लूँ।"

नामदेव भीतर गये। प्रतिमा के समक्ष आँखें मूंदकर लीन हो गये। आँख से सावन-भादों बरसने लगे। जब बाहर आये तब उनकी आँखों में आँसु देखकर ज्ञानेश्वर तो चकित रह गये।

तीर्थयात्रा में जुडने की अनुमति मिल गई और ज्ञानेश्वर के जीवन में नामदेव की संगति के प्रताप से अपूर्व कोटि की प्रभुभक्ति रस-बस गई।

भक्ति ही हृदय को आर्द्र बनाता है ,कोरा ज्ञान बेचारा करे तो भी क्या ?"

83. संस्कारों की तीव्र शक्ति

एकबार क्षत्रिय कर्ण परशुराम के पास ब्रह्मास्त्र सीखने केलिए गये । परशुराम तो ब्राह्मण के अतिरिक्त किसी को विद्या प्रदान करते नही थे । अतः कर्ण भी ब्राह्मण के रूप में उनका शिष्य हुआ।

एकबार कर्ण की गोद में माथा रखकर परशुराम गहरी नींद सो गये । उस वक्त कर्ण की जंघा में कोई कीडा चीपक गया और जंघा में दंश देने लगा । खून बहुत बहने लगा । फिरभी गुरु परशुराम की नींद में खलल न हो ,इसलिए दंश की पीडा सहते हुए स्थिर बैठे रहे । वह तनिक भी हिले-डुले नही ।

जब परशुराम जगे तब कर्ण की इतनी सहिष्णुता देखकर कण के कुल को लेकर सशंक हुए ।

जब कर्ण ने परशुराम से कहा कि "वह क्षत्रिय है तब अपने पास झूठ बोलकर आजतक विद्या ले चुके कर्ण को परशुराम ने शाप दिया कि " ऐन मौके पर ही तुम अपनी विद्या को भूल जाओगे ।"परशुराम ने कर्ण को बिदा कर दिया ।

कर्ण के क्षात्रत्व के संस्कार विस्मृत नही हुए तो नही हुए ।

84. तुम अखण्ड सौभाग्यवती होना

अजैन महाभारत में यह प्रसंग आता है । बात युँ थी कि भीष्म ने प्रतिज्ञा की कि आनेवाले कल के युद्ध में मैं पांचों पाण्डवों का संहार करूँगा तब यह जानकर द्रौपदी डर गई । रात्रि के दो बजे छद्मवेश में द्वौपदी श्रीकृष्ण केसाथ भीष्म की शिविर में गईं ।

तब भीष्म ध्यानस्थ थे । पहरुओं ने कृष्ण और द्रौपदी को रोकते हुए कहा :"इस समय भीष्मपितामह मात्र अखण्ड सौभाग्यवती को ही दर्शन देते हैं ।"

कृष्ण ने कहा :" मेरे साथ आयी यह बहन अखण्ड सौभाग्यवती ही है । भीष्म पितामह के आशीर्वाद लेने केलिए आयी है ।"

पहरुए ने उसे भीतर जाने दिया । भीष्मपितामह जैसे ही ध्यानमुक्त हुए कि द्रौपदी ने कहा :"मेरा सौभाग्य अखण्ड रहे ऐसे आशीर्वाद दीजिए ।"

और तुरंत भीष्मपतिामह ने आशीर्वाद दिये :"तुम अखण्ड सौभाग्यवती होना !"

तुरंत द्रौपदी ने कहा कि :"कल आप पाण्डवों का संहार तो नही करेंगे ना ।"क्योंकि मैं उनकी पत्नी द्रौपदी हूँ ।

भीष्म ने कहा :"मेरे आशीर्वाद कभी विफल नही होंगे । मैं पाण्डवों का संहार नही करूँगा और मैं स्वयं को खत्म कर दूंगा ।"

85. धूर्त धृतराष्ट्र

धृतराष्ट्र महाभारत के कुरुक्षेत्र में कौरवपक्ष में महाभयानक संहार होने के कारण और दुर्योधन आदि अपने सौ पुत्रों को गँवा बैठने के कारण अतिक्रोधित था ।

महासंहार के अनंतर कृष्ण ,भीष्म तथा पांच पाण्डवों के साथ धृतराष्ट्र से मिलने केलिए गये ।

धृतराष्ट्र को सबसे अधिक भीम केप्रति ही क्रोध था क्योंकि उसने अन्याय की राह पर चलकर पुत्र दुर्योधन को खत्म किया था । धृतराष्ट्र कपटी थे तो श्रीकृष्ण चालाक थे । वे पहले से ही जानते थे कि कृद्ध धृतराष्ट्र भीम को खत्म करके ही रहेंगे ।

अतः धृतराष्ट्र ने जब भीम को अंक में भरने की बात कही तब श्रीकृष्ण ने भीम के स्थान पर भीम के पुतले को धृतराष्ट्र के समक्ष रखा । धृतराष्ट्र ने इतने जोर से पुतले को अंक में भर लिया कि पुतला चूरचूर हो गया । बाद में शोक करते हुए कपटी धृतराष्ट्र ने रोते हुए कहा कि : "मैं भीम को प्यार से अंकबद्ध करने गया कि भीम की यह दशा हो गई ।"

तब श्रीकृष्ण ने कहा कि :"धृतराष्ट्र ! अच्छा है कि मैं आपके कपटपूर्ण स्वभाव को भली-भाँति जानता-समझता हूँ इसलिये भीम के बदले उसका पुतला रखकर भीम को बचा पाया हूँ।"

86. हेमचन्द्रसूरिश्वरजी की माता पाहिनी

कलिकालसर्वज्ञ श्री हेमचंद्रसूरिश्वरजी की माता पाहिनी ने दीक्षा ली थी । काफी समय के दीक्षाकाल के बाद उनका अंतकाल समीप आ गया । उस वक्त सूरिजी भी उनको अंतिम आराधना करवाने केलिए उपस्थित हो गये थे ।

अंतिम दिवस पर समस्त संघ उपस्थित था । संघ में से सब ने व्यक्तिगत रूप में पाहिनी साध्वीजी के निमित्त अपनी दानादि की आराधनाएँ घोषित की । तत्पश्चात् संघ समस्त कीओर से साढेतीन करोड की दानराशि घोषित हुई ।

उस समय पाहिनी साध्वीजी के मुख पर उद्वेग देखकर संघ अग्रणियों ने पूछा कि :"क्या साढे तीनकरोड के दान में और बढावा करें ऐसा आप चाहती हैं? आपश्री उदास क्यों हैं ?"

साध्वीजी ने कहा:"ना,ऐसी बात नही है पर मेरे संसारीपने के पुत्र आचार्यश्री अबतक क्यों कोई पुण्य घोषित नही कर रहे ?"इस विचार से मैं उदास हूँ।"

और तुरंत आचार्य भगवंत ने नये साढे तीन लाख श्लोकों की रचना करना घोषित किया और उसी केसाथ वह स्वयं सवाकरोड नवकार मंत्र का जाप करेंगे-यह भी घोषित हुआ ।

और पाहिनी के दिल में आनंद की हिल्लोरें उठने लगी । सुंदर समाधिपूर्वक उन्होंने कुछ ही क्षणों में प्राणत्याग कर लिया ।

87. भवदेव और नागिला

अग्रज मुनि भवदत्त की शर्म आने से नवोढा को सजा रहे अनुज भवदेव ने शृंगार अधूरा छोडा और सर्वसंगत्याग के कल्याणकारी पथ पर चल पडे। नागिला का पति मुक्तिपथ का यात्री हुआ पर इस यात्रा में तन चल रहा था,मन तो नागिला के पास ही अटका हुआ था। भेष तो धारण कर लिया पर अंतहीन पछतावे ने पीछा नही छोडा।

भाई की शर्म में आकर मैंने यह क्या कर दिया? मेरे लिये तो मानो नागिला में ही स्वर्ग था। नागिला में ही मोक्षसुख था। मैं कहाँ अन्य मोक्षसुख के मार्ग में उलझ गया ? मुझे नही चाहिये वह स्वर्ग-मोक्ष। मेरे द्वारा स्वीकृत स्वर्ग-मोक्ष से अधिक और क्या है ? कहाँ है?"

उजले वस्त्रधारी भवदेव के मन में यमुना के श्यामल जल प्लावन उमडने लगा। मन की समस्त भूमि को इस जलप्लावन ने प्रभावित कर दिया। सर्वत्र नागिला ही दिखाई देने लगी। एक नागिला अनेक रूपधारिणी हुई।

बेचारी केसाथ मैंने धोखा किया। कोमल कन्या की मैंने जीते जी हत्या कर दी। सर्व जीवों केप्रति करुणा की मुझे चिन्तना नही करनी है। मुझे इसका हक ही नही है।

बारह बारह वर्ष बीत गये। एक दिवस आया। मुनिवृंद से दो नंबर कम हो गये। महात्मा भवदत्त मुनि कालधर्म को प्राप्त हुए कि तुरंत बाण से छूटे हुए तीर की भाँति भेषधारी भवदेवमुनि भी भाग खडे हुए।

वृंद से एक बकरी चली गई। प्रकृति ने राहत का दम लिया। विसम्वादिता के दूर होने का आनंद अनुभव किया।

मुनि भवदेव दिनरात चलते ही रहे। नागिला के स्मरण के विटामिन की गोलियों ने उसमें अजिब सी शक्ति का संचार कर दिया। अनथक यात्रा ने उन्हें एक दिन नागिला के गाँव पहुँचा दिया।

गाँव के रहावन में एक कुँआ था। अनेक पनिहारियाँ वहाँ जमा हुई थीं। कुँआ उन्हें पानी देता था। खुशी खुशी ये पनिहारियाँ माथे पर मटके रखकर अनेकविध बातें करती हुई गाँव कीओर जा रही थी। फिरभी सबका मन तो मटके पर ही केन्द्रित था।

मुनि भवदेव ने बारहवर्ष तक ऐसी अखण्ड साधना का यज्ञ किया था । समस्त धर्मप्रवृत्ति में भी चित्त तो नागिला में ही जकडा हुआ था –बिना किसी आयास के, एकदम सहज भाव से।

बारह वर्ष पर्यंत जिसका अजपाजाप चला था ,जो मन में रसाबसा था फिरभी ओठों तक आया नही था वह नाम-नागिला एकदम बाहर आ गया। भवदेव ने एक पनिहारी से पूछ ही लिया :"अरि ! नागिला कहाँ रहती है ?" नागिला के नामोच्चार केसाथ ही शरीर के रोमरोम खडे हो गये। शरीर से अकथ्य सम्वेदना की बिजली कौंध गई।

वह पनिहारी और कोई नही थी पर भवदेव के हृदय मंदिर की प्राणेश्वरी नागिला ही थी। कर्म ने क्यों उसका मेल करा दिया होगा ? क्या इस मिलन से भयानक आग की ज्वालाएँ तो नही प्रज्वलित हो जायेंगी ? ना ;कर्म का गणित हमारी समझ से परे है। चाहने पर भी समझ नही सकते। कईबार उल्टा भी अच्छे केलिए पड जाये और सीधा भी उल्टा पड जाये।

जो कार्य मजेदार साधुभेष ने नही किया ,वह कार्य इस मिलन से सम्भव हो गया। बारह वर्ष की जडीबुटी विफल हुई और विष जीवन दे गया। आध्यात्मिक जगत में ऐसे अकस्मात कईबार होते हैं। हकीकत में ये अकस्मात नही होते हैं। बाह्य दृष्टि से अनेक प्रसंगों को अकस्मात का नाम दिया जा सकता है। मनुष्य जाना कहाँ चाहे और कहाँ पहुँच जाये ?

हिटलर तो कुशल चितेरा बनना चाहता था और बन गया खूनी सरमुखत्यार।" विकार ओफ वेकफिल्ड " के रचयिता गोल्डस्मिथ को शल्यक्रिया की शिक्षा प्राप्त करनी थी और हो गया महाकविराज। नेपोलियन को साहित्यकार होना था और बन गया संहारक सरमुखत्यार !

अनचिती घटनाओं को भले ही अकस्मात कह दिया जाये पर आध्यात्मिक जगत में अकस्मात का बीज भी नही है। आध्यात्मिकों में अकस्मात जैसा कोई शब्द ही नही है। सबकुछ कर्म के गणितानुसार घटित होता रहता है। कर्म का गणित ही वस्तुमात्र का सृजनकर्ता है ,विसर्जन करता है और कुछ समय तक उसकी स्थिति भी बनाये रखता है। उस गणित में भूल केलिए कोई मौका ही नही होता। कर्म के गणित की कोई उपेक्षा नही कर सका है। ब्रह्मा,विष्णु या महेश भी जिसका

अस्वीकार नही कर सकते। समग्र जीवन तंत्र उसीके अनुसार अनुशासित रहता है। ब्रह्माजी भूलेंगे,पर कर्म के गणित में कदापि भूल नही मिलेगी। विष्णुजी चूक करेंगे पर यह गणित कभी चूक नही करता। महादेवजी से कुछ गडबड हो सकती है पर इस गणित में गडबड केलिए कोई मौका नही दिखाई देगा।

भवदेव के जीवन में यह अकस्मात नही हुआ है। भवदेव के भव्यतम विकास केलिए ही कर्म ने नागिला को सामने लाकर खडा कर दिया है। अज्ञान जीवों केलिए भावि अकबंद ही रहता है और ऐसा रहे उसी में ही पुरुषार्थ का गौरव बराबर बना रहता है। अन्यथा इस संसार में उल्कापात हो जाये।

नागिला की कृश देह को भवदेव पहचान नही पाये। नागिला ने अनजान होकर पूछा,"आपका नागिला से क्या सम्बंध ?" नागिला के सम्बंध की बात को बंधन न मानते हुए भवदेव ने कहा:"मैं उसका वर हूँ।"

"क्या कहा आपने ?"नागिला के पति ! ओ साधु ! आप वर हैं या मुनिवर ? आप होश में तो हैं ना?"

नागिला को कहाँ पता था कि उसके जाप में बारह वर्ष की सभानता ने ही उनको साधना के जीवन में बेहोश कर दिया था। आज तो वह पूरे होश-ओ-हवास में थे।

कोकिलकण्ठी की आवाज सुनते ही भवदेव ने नागिला को पहचान लिया। अनिमिष दृष्टि से देखकर कह ऊठे : "तुम ही नागिला हो,तुम्हारा यह शरीर ! मैं भी पहचान नही सका ! नागिला ! चलो ,घर चलो। ढेर सारी बातें करनी हैं। काफी कुछ करना है। जल्दी चलो,ऐसे बीच राह में रुकते नहीं है।"

"मुनिवर !"नागिला ने पूरी स्वस्थता केसाथ कहा :" यह घर तो नागिला का है। भवदेव रहना चाहे तो रहे परंतु भवदेव और नागिला उस घर में दोनों एकसाथ नही रह सकते। नागिला के घर में बारह वर्ष से अद्वैत की उपासना का आरम्भ हो चुका है। द्वैत से उसे अपवित्र नहीं किया जा सकता।"

आकाश से यकायक गाज गिरे ऐसा आघात भवदेव ने अनुभव किया। वज्र जैसी छाती में जैसे कोई कडाका हुआ। एक अबला ने महाबलि को भी म्हात कर दे ऐसा जोरदार चाँटा उसके गाल पर रसीद कर दिया ऐसा क्षणमात्र केलिए अहसास हुआ। धरती चकराने लगी। आँखें भी मानों चकराने लग गईं।

भवदेव के मुख की प्रत्येक रेखा के बदलते हुए रंगों को नागिला गम्भीरतापूर्वक तलाश रही थी। आज उसने एक पतित को पावन करने का कठोर संकल्प कर लिया था। इस सिद्धि पाने केलिए यह अबला संघर्ष करने केलिए अपनी कमर कसी थी। पल दो पल में ही भवदेव ने स्वस्थता धारण करते कहा :

"अरे मुढ नागिला ! मेरे अंत:करण की अकथ्य उमंग का तुम्हें कहाँ अंदाज है ? मैं किसके लिए दौडा चला आया हूँ ? तुम ही मेरा असत्कार (अवमानना)कर रही हो ? यही तुम्हारी बारह वर्ष की शिक्षा! यही तुम्हारा पतिप्रेम ! चल घर चल। मुझे तुम से सारी बातें करनी हैं।"

नागिला ने कहा :" मुनीश्वर ! आपके अंत:करण की मेरे द्वारा हुई कल्पना तो आपके दर्शन से ही चूर-चूर हो गई है। अब मुझे उस उमंग में इजाफा करना नही है जिसमें विकार के घूरे जैसी सडांध ऊठ रही है। मुनि भवदेव का मैं कभी असत्कार करनेवाली नही हूँ पर पतित भवदेव से तो मैं बात करना नही चाहती। बारह वर्ष की मेरी शिक्षा (साधना) के परीक्षक बनने केलिए आप नितांत अयोग्य हैं। त्रिलोकपति के नेह से धोखा करनेवाली आत्मा किस मुख से पतिप्रेम की बात कर रही हैं ,यह बात मेरी समझ से परे है। मुनिवर ! जो भी कहना हो ,मुझे यहाँ कह दीजिए। आपको सुनने केलिए मैं तैयार हूँ परंतु यह नागिला आपके साथ घर चलना नही चाहती है।"

"पर नागिला ! तुम्हारी याद में मैंने बारह वर्ष बीताये हैं। इसी रटना ने मुझे जीवित रखा है। तुम्हारी आशा में ही बडेभैया की मौत का रास्ता देखते हुए साधुभेष में बैठा रहा था। अब मन की वासनाएँ जोरजोर से उनका भक्ष्य मांगती हैं और बहुत सताती हैं। अब उन नागिनों को भक्ष्य नही दिया जायेगा तो मैं खुद ही उनका भक्ष्य हो जाऊँगा। इस देह का त्याग कर दूंगा।"

नागिला क्रोधावेश में चीखकर बोली :"अर्थात् क्या आप यह कहना चाहते हो कि उन नागिनों की शिकार नागिला हो ? मुनिराज ! स्मरण रहे ,नागिला किसीका भी भक्ष्य होने केलिए जी नही रही। वह उन नागिनों का भक्ष्य बनने से अधिक प्रज्वल्यमान अग्नि का भक्ष्य हो जाना अधिक पसंद करती है।"

धृष्टता बनाये रखे भवदेव ने पुन : कहा :" नागिला ! मुझे क्षमा कर दो ,मेरी इस बात का स्वीकार

कर लो। ये आँखें अब तुम्हारे दर्शन नही छोडेगी। यह मन अब तुम्हारे साथ चौबीसों घंटे बातें करते रहने केलिए अधीर हुआ है।"

"ओ मुनिवर ! बंद करो यह बकवास !"नागिला ने कान में उंगलियाँ डालते हुए ,बात को बीच में ही काटते हुए कहा :"सचमुच यदि आप नागिला को चाहते हो ,उसकी बात मानने केलिए राजी हैं तो नागिला का आपको आदेश है कि आपकी ये आँखें यदि समझना ही नही चाहती हैं तो उन्हें फोड डालो। नागिला मानती है कि अंगहानि के मुकाबले सत्वहानि बहुत भयंकर है। सत्व के खातिर सारा अंग भी यदि भस्म हो जाता है तो भी अनुचित नही होगा। मुनिन्द्र ! मैं आपको अपनी क्या कहूँ ? दूबले आप हुए तो दूबली मैं भी हुई परंतु आप मेरे ध्यानाग्नि के पास बैठकर सूखाते रहे लहू और मांस जबकि मैंने अपने चारित्र्य (शील) की रक्षा केलिए त्याग और तप की आग प्रज्वलित की। लहू और मांस को सूखवा दिया। आपने अपने मन को मारकर बारह वर्ष की जिंदगी को खत्म किया। मैंने अपने मन को सरसता से तैयार करके बारह वर्ष गुजारे। आपके लिए बारह वर्ष बारह युग जितने लम्बे हुए जबकि मेरे लिए तो बारह दिन जैसे छोटे हुए।

निज पति गये तो भले ही गये। मैंने अपने मन को मना लिया और विश्वपति को मेरे रिक्त पडे अंतर में बिठा दिया है। मैं उनकी भक्ति में मत्त हुई। मैंने उनकी स्तवना में होश गँवाया। वे मेरी रति के केन्द्र हुए। मुनिवर्य ! आपको भी मैंने अपने पति के रूप में विस्मृत करके अपने गुरु केरूप में और अंततोगत्वा मेरे तरणतारण देव के रूप में प्रतिष्ठित किया। जब-तब आप ही मेरी आँखों के सामने आते रहते थे।"

"प्रातःवेला में मैं आपको स्वाध्याय की धून में होश गँवाते देख हर्षित हो ऊठती थी। मध्याह्न वेला में अतिशय गरमी में धीर-गम्भीर रूप में भिक्षार्थ निकले हुए देखकर उस तपोमूर्ति की भावपूर्ण वंदना करती रहती थी तथा सायंकाल में गुरु के समक्ष आपको पापों का प्रायश्चित करते देख मुझे मन ही मन ईर्ष्या होती थी। मुझे अपने आप से नफरत(धिक्कार) होती थी। अरे ! कईबार तो मंदिर में देवाधिदेव के मुखदर्शन करते हुए मुझे उनमें भवदेव के दर्शन होते थे और मैं अतिहर्षित हो ऊठती थी। मेरा रोम-रोम पुकार ऊठता था कि :"धन्य वह जीवन, धन्य वह मुनिवर ! मेरे अंतर के देव !"

"आप उस मार्ग पर नही चले होते तो क्या खबर यह नागिला मात्र काले संसार का सृजन करती और आप जैसे परम पवित्र महात्मा को उसका बलि बना देती ! आपने तो मुझे जीवन प्रदान किया। मुझे अक्षेपक ज्ञान का उपहार दिया। विषयों से विरक्त किया। समता के सागर में झूलाया। सचमुच आप मेरे जीवन के सही मायने में साथी हुए हैं।"

नागिला की आँखें अश्रुपूरित हुईं। उसे गले में घुटन सी अनुभव हुई। मुनि तो स्तब्ध होकर खडे रह गये। खंखारकर नागिला ने कहा :" ओ मुनि भगवंत ! आपने तो मेरे जीवन को धन्य कर दिया। मुझ पर असीम उपकार किया और मैंने अपने रूप में आपका होश गँवाया। उपकारी के उपकार का प्रतिदान मैंने इस प्रकार दिया। मैं कृतघ्न हुई ! हम नारी जाति का यह कैसा अक्षम्य अपराध ! हमारे रूप की यह तो कैसी भयावहता कि उसकी लपट में पवित्र पतंगे चौंधियाकर खाक हो जाते हैं ! नश्वर रूप में क्षणिकत्व का कलंक हमने किसी को नही दिखाया ? स्वरूपवान त्वचा में किलबिलाती गंदगी की बात हमने किसी से नही की ?

ओ मुनिदेव ! मुझे माफ कीजिए। मैं आपकी चरणरज हूँ। फिरभी मुझे कहने दीजिए कि सुंदर वस्त्रों में विषपायी छुरी पडी हुई है। आपके अंतर में उतरकर आत्मसाधना को खत्म कर देगी। ऐसे रूप के प्रति उस गुलाबी केप्रति इतना मोह किसलिए ? उसके ध्यान में आप अंतर की विशद्ध सुधा को खो बैठेंगे। उसमें संयोग के अनंतर अवश्य आनेवाले वियोग के आतंक को आप सह नही सकेंगे ,ऐसे भयावह होंगे। कूडे से भरी हुई गाडी को चाहे कितना ही पुष्पों से सजाया जाये तो वह स्पृश्य नही बन जाती। आग चाहे कितनी ही आकर्षक हो फिरभी वह स्पृश्य कभी नही हो सकती। विजातीय के रूप भी ऐसे ही अस्पृश्य हैं। भगवान मल्लीनाथजी ने हमें क्या यह बोध नही दिया है ?

"मुनिराज! आपने तो कैसा अनुपम जीवन प्राप्त किया है ! एक ही जीवन की विशुद्ध साधना,सर्व दुःखों,सर्व पापों,पापवृत्तियों को जडमूल से ऊखाड देने में समर्थ हैं। अनंतसुख का उपहार आपके चरणों में रख दे ऐसी है ,ऐसे हिमालयवत् लाभ को इस पामर कंकड जैसे सुख केलिए छोड देना चाहते हैं ? यह कैसी बालिश कल्पना है ! कितनी मूर्खता है !

हे मुनिश्वर ! विषयभोग अगणित जीवों को मृत्युन्मुखी बनाता है। उन मृतःदेहों की कबरों पर

बैठकर आनंद लेने का हमें क्या अधिकार है ? मानव तो सर्व का रक्षक होता है या भक्षक? मानव यदि सर्वभक्षी हुआ तो दीन-दुखी और असहाय जीवों की रक्षा कौन करेगा ?

मुनिवर ! अब भी कुछ बिगडा नही है ! यहाँ से वापस लौट जाओ । आप नागिला के स्वामी बनने केलिए जन्मे नही हैं । यदि ऐसा ही होता तो बडे भैया आपको बुलाने केलिए आये नही होते । आपका जन्म तो सर्वजीवों के स्वामी होने ,सर्व जीवों को अभय वचन देने केलिए ही हुआ है । चलिए , विश्व के कोने कोने में घूम लीजिए । वीतराग का परम शुद्ध मार्ग सब के दिल में गूंजित-अनुगूंजित कर दीजिए । दुःखियों को आश्वस्त कीजिए ,पतितों को शान्ति प्रदान कीजिए ,विषयांध को सन्मार्ग का दान दीजिए। ओ ओ मुनिराज ! जीव-जीवनरक्षक ! जाइए ,मैं सच्चे अंतःकरणपूर्वक आपको आशीर्वाद किया । समता के सागर में झूलाया । सचमुच आप मेरे जीवन के सही मायने में साथी हुए हैं ।"

नागिला की आँखें अश्रुपूरित हुईं । उसे गले में घुटन सी अनुभव हुई । मुनि तो स्तब्ध होकर खडे रह गये । खंखारकर नागिला ने कहा :" ओ मुनि भगवंत ! आपने तो मेरे जीवन को धन्य कर दिया । मुझ पर असीम उपकार किया और मैंने अपने रूप में आपका होश गँवाया । उपकारी के उपकार का प्रतिदान मैंने इस प्रकार दिया । मैं कृतघ्न हुई ! हम नारी जाति का यह कैसा अक्षम्य अपराध ! हमारे रूप की यह तो कैसी भयावहता कि उसकी लपट में पवित्र पतंगे चौंधियाकर खाक हो जाते हैं ! नश्वर रूप में क्षणिकत्व का कलंक हमने किसी को नही दिखाया ? स्वरूपवान त्वचा में किलबिलाती गंदगी की बात हमने किसी से नही की ?

ओ मुनिदेव ! मुझे माफ कीजिए । मैं आपकी चरणरज हूँ । फिरभी मुझे कहने दीजिए कि सुंदर वस्त्रों में विषपायी छुरी पडी हुई है । आपके अंतर में उतरकर आत्मसाधना को खत्म कर देगी । ऐसे रूप के प्रति उस गुलाबी केप्रति इतना मोह किसलिए ? उसके ध्यान में आप अंतर की विशद्ध सुधा को खो बैठेंगे । उसमें संयोग के अनंतर अवश्य आनेवाले वियोग के आतंक को आप सह नही सकेंगे ,ऐसे भयावह होंगे । कूडे से भरी हुई गाडी को चाहे कितना ही पुष्पों से सजाया जाये तो वह स्पृश्य नही बन जाती । आग चाहे कितनी ही आकर्षक हो फिरभी वह स्पृश्य कभी नही हो सकती । विजातीय के रूप भी ऐसे ही अस्पृश्य हैं । भगवान मल्लीनाथजी ने हमें क्या यह बोध नही दिया है ?

"मुनिराज! आपने तो कैसा अनुपम जीवन प्राप्त किया है ! एक ही जीवन की विशुद्ध साधना,सर्व दुःखों,सर्व पापों,पापवृत्तियों को जडमूल से ऊखाड देने में समर्थ हैं । अनंतसुख का उपहार आपके चरणों में रख दे ऐसी है ,ऐसे हिमालयवत् लाभ को इस पामर कंकड जैसे सुख केलिए छोड देना चाहते हैं ? यह कैसी बालिश कल्पना है ! कितनी मूर्खता है !

हे मुनिश्वर ! विषयभोग अगणित जीवों को मृत्युन्मुखी बनाता है । उन मृतःदेहों की कबरों पर बैठकर आनंद लेने का हमें क्या अधिकार है ? मानव तो सर्व का रक्षक होता है या भक्षक? मानव यदि सर्वभक्षी हुआ तो दीन-दुखी और असहाय जीवों की रक्षा कौन करेगा ?

मुनिवर ! अब भी कुछ बिगडा नही है ! यहाँ से वापस लौट जाओ । आप नागिला के स्वामी बनने केलिए जन्मे नही हैं । यदि ऐसा ही होता तो बडे भैया आपको बुलाने केलिए आये नही होते । आपका जन्म तो सर्वजीवों के स्वामी होने,सर्व जीवों को अभय वचन देने केलिए ही हुआ है । चलिए , विश्व के कोने कोने में घूम लीजिए । वीतराग का परम शुद्ध मार्ग सब के दिल में गूंजित-अनुगूंजित कर दीजिए । दुःखियों को आश्वस्त कीजिए ,पतितों को शान्ति प्रदान कीजिए ,विषयांध को सन्मार्ग का दान दीजिए। देती हूँ । आप सभी जीवों के त्राता बनो । वैषयिक वृत्ति के प्रति स्वामित्व प्राप्त कर सच्चे अर्थों में संत बनिए ।

"सत्योपासक संत ! जीवन के भव्य शिल्पी ! मैं आपको अंतःकरणपूर्वक अपनी अनंत वंदनाएँ अर्पित करती हूँ । अविनय अपराध केलिए माफी चाहती हूँ । क्षमादान अवश्य करें ।"

आंतरसाधना की सरिता के कलकल निनाद करते प्रशांत जल के प्रिय श्रवण में भवदेव एकाग्र हुए । संसार-जगत की एक अबला न उसी बारह वर्षीय धन्यतम विराग की उपासना को सुनते ही उनके शरीर में सिहरन सी दौड गई । धरती यदि रास्ता दे तो उसमें नीचे उतर जाने की पुकार रोम-रोम से होने लगी । स्वयं पर धिक्कार बरसानेवाले पश्चात्ताप के आँसु बहने लगे । नागिला का अंतर आनंदानुभूतिवश नर्तनरत हो गया ।

आर्द्र स्वरों में मुनिवर ने कहाः" सती साध्वी ! आप आज मेरी गुरू हुईं । पतन की गहरी गर्त्ता में कूद जाने केलिए बेताब मुझे आपने जीवनदान दिया । विराग के बंद चक्षुओं को आपने खोल दिया । मैं

अपनी अंत:करणपूर्ण वंदना आपकी अंतरात्मा को अर्पित करता हूँ। मैं आपके इस उपकार को कभी विस्मृत करूँगा नही।"

नागिला ने सस्मित कहा :" ओ प्रिय गुरुदेव ! कहाँ आप और कहाँ आपकी चरणरज धारण करने में अयोग्य यह दासी !

ऐसा न कहें। आज मेरा आनंद सागर हिलोर पर है। मेरी साधना को गति प्राप्त हुई है। मुनिराज ! "मत्थएण वंदामि" नमस्कार करके नागिला ने अपने घर की दिशा में प्रस्थान किया।

भवदेवमुनि की वृत्तियों का ऊर्ध्वगमन हुआ। मुनिवर ने जीवन के ऊर्ध्व विकास की डगर पर कदम बढाये।

88. नरकेसरी मगधराज

(इस कहानी को अधिक रोचक बनाने केलिए अजय और संजय नामक दो काल्पनिक पात्रो की उद्‌भावना की गई है।)

एक अंधियारी रात थी। उस रात्रि के गहरे अंधेरे को चीरती हुई किसी की पुकार उत्तर दिशा की पवन पर सवार होकर राजगृही नगर की ओर आ रही थी। उस पुकार में भारी करुणता थी। प्रवाहित लहू भी जम जाये ऐसे उसके स्वर थे। राजगृही के नागरिकों की रातें ऐसे ही दर्द से भरी हुई बीतती थीं।

सब जानते थे कि ये पुकारें कहाँ से आती हैं ? मगधराज श्रेणिक ने कैदियों को सताने केलिए बनायी फौलादी चार दीवारों के अंदर कैद से उसी मगधराज का चित्कार था।

वे स्वयं खुद में कैद थे। वह सूर्य अब अस्ताचलगामी हो गया था पर किस में यह साहस था कि उदियमान सूर्य (राजा श्रेणिक) के सामने कोई अपना मस्तक ऊठा सके? और ऊठाये तो उसके शर को तो कलम होना ही है।

89. महात्मा नंदिषेण

(इस कहानी को ज्यादा रोचक बनाने केलिए अजय और संजय नामक दो काल्पनिक पात्रों की योजना की गई है ।)

"मुनिराज ! यह तो वेश्या का घर है । वेश्या को तो अर्थलाभ चाहिए । आपके धर्मलाभ की उसे कोई जरूरत नही । अर्थत्यागियों में अर्थलाभ के आशिष देने का तो साहस ही कैसे हो सकता है ? क्यों मुनिवर ! है साहस अर्थलाभ देने का ? मैं भूली ,यह प्रश्न ही अनुचित है ।" गोचरी केलिए भूल से प्रवेश कर गये मुनि नंदिषेण से कामलता वेश्या ने कहा , पर जवान मुनि का खून खौल गया !"हम मुनि अर्थात् क्या नामर्द ? हमारे अंदर और कोई ताकत ही नही ? एक स्त्री की नजर में जैन मुनि अर्थात् गरीब बकरी ।"

"ओ कामलता ! तुम अपना मुँह सम्भालकर बोलो । लो देखो हमारा सत्व ! "ऐसा कहकर जमीन पर पडे तिनके को मुनि ने ऊठाया । उसके दो टुकडे करते ही सौ करोड सोनैयों की वृष्टि हुई !

कामलता तो सन्न रह गई । उसका तो दीमाग काम ही नही कर रहा ।

"ध्यान रखना । अब कभी जैनमुनि की कमजोरी की बात नही करना ।" ऐसा कहकर मुनि दरवाजे कीओर मुड गये । जैसे ही कदम ऊठाते हैं कि चालाक कामलता ने रास्ता काटकर पैरों में गिरकर उनके चरण पकड लिये ।

कामराज ने शरसंधान किया ! काम रसी वाणी का धनुषटंकार हुआ । एक के बाद एक कटाक्ष के तीर छूटे !

बिद्ध हुई मुनिराज की आत्मा !

"मुनिवर ! चरण पकडकर कामलता बोली :"यह अर्थलाभ तो दिया पर इस अर्थ के ढेर का भोक्ता कौन ? इससे तो जिंदगी चल जाये उतने कामसुख भोगे जा सकते हैं । अब कामलाभ भी आपको ही देना होगा । अन्यथा इस द्वार से बाहर नही जाने दूंगी । कदापि नही जाने दूंगी ।

कामराज के विविध शरसंधान होते जा रहे थे । विजय हुई ! महात्मा नंदिषेण की तपोमय देह

पतीत हुई। हाडमांस की देह को उन्नत रख कर।

मुनिजीवन गया। गंदे कपडे गये ! करण (इन्द्रियाँ) तो रही पर उपकरण बिदा हो गये। गठरी को बांधकर ताक पर रख दिया !

"कामलता ! कायर हुआ हूँ ! तुम्हारी बात से और मेरा भोगावलि कर्म निकाचित है ,उसके स्मरण से पर अंतर में विरति केप्रति जो स्नेह बसा हुआ है वह तो अकबंद है हाँ। भले ही आज मैं गिरा पर प्रतिज्ञा करता हूँ कि रोज दस सांसारिक जीवों को तैयार करके विरति के पंथ पर भेजूँगा ,तत्पश्चात् मुँह में अन्न-जल रखूँगा।

खडखड हँसते हुए कामलता ने कहा :"पर यदि किसी दिन दस नही हुए तो ! मात्र नौ ही हुए तो ! क्या करोगे ? उपवास करेंगे ? "

"ना ,जिस दिन दसवाँ कोई नही हुआ तो उस दिन दसवाँ मैं खुद ! बोलो अब कुछ कहना है?"

"ओहो ! क्या तुम्हारा विरति के प्रति प्रेम है ?"क्या मेरे लिये ऐसा प्यार नही रखोगे ?"गाल पर हलकी सी चपत लगाते हुए कामलता ने कहा।

"इसमें पूछने की क्या जरूरत ? विरति के प्रेम के आगे तो सारे प्रेम व्यर्थ।" तुम्हारे प्रति भी …."

"भले…भले छोडो ये सारी बातें। यह सब तो मैं देख लूंगी। तुम्हारी प्रेयसी विरति तो मेरी शत्रु ! उसे तो भगाकर ही मैं दम लूंगी। हमारे लिये तो यह बच्चों का खेल ही है। चलिए ,अब एक अपूर्व नृत्य दिखाती हूँ ,मेरे स्वामीनाथ ! देखेंगे ना ?"ऐसा कहकर कामलता बगलवाले कमरे में साजसज्जा केलिए गई।

नंदिषेण सोचने लगा :"अहो ! मैंने यह क्या कर दिया ? एक ही भव में तीन-तीन भव ! कौन मैं ? मगधेश्वर का लाडला लाल नंदिषेण, भगवान महावीर के उपदेश से एकबार विरति के रंग में रंगा ! बेशक ,देवों ने मुझे रोका था, विरति के पथ पर जाने से। ऐसा कहकर कि "मेरा भोगावलि कर्म निकाचित है। गृहवास का पुनः सेवन करना पडेगा।" पर मेरे उत्कट विराग ने उन बातों का निरसन कर दिया था। मैंने कहा था। "मर्द हूँ। मर्द का बच्चा हूँ। भगवान महावीर का शिष्य हूँ। कर्म तो मेरे आगे पामर हैं ,बेचारे। करम- करम का रटण करना सौंप दिया है मगध की वृद्धाओं को। मेरे पास तो हैं

पुरुषार्थ की बातें । कर्म संग्राम तो सख्त पुरुषार्थ से ही भेद्य है ! कर्म की प्रबलता की बातें मेरे समक्ष लाना नही ।"

"मौन रहे परमात्मा ने मुझे विरति प्रदान की । दिन प्रतिदिन मेरा उल्लास बढता गया । भीषण पुरुषार्थ की भयानक गति से चल रही चक्की में कर्मों के माथे पिसे जाने लगे ! कर्मराज की सेना में बारबार चुप्पी छाने लगी ।

घोर तप, अपूर्व स्वाध्याय, भगवद् – भक्ति आदि मेरे शस्त्रास्त्र थे ।

"पर...कौन जाने एकाएक एकबार क्या हो गया ?"कुछ भी नही था ,फिरभी मेरा मन उद्विग्न हुआ । धीरे धीरे उद्विग्नता बढती चली । न जाने क्यों इस भीषण संग्राम में देह श्रमित हुई न हो ! मेरी जंग कुछ धीमी पडी । खेद-उद्वेग,उन्माद आने लगा । तत्पश्चात् तो मुझे कामविकार सताने लगे और दिनप्रतिदिन और सताने लगे ।

मैने दृढ निश्चय कर लिया । पर्वत के शिखर से छलांग मारनी है । उज्जवल यह देह दूषित हो उससे पहले उसमें से निकल जाना है । भगवंत द्वारा कथित वह पंक्ति मुझे याद आयी :"वरं वाही वरं मच्चु"..बस परमोपकारी की भी यही आज्ञा है । विकारों के वश में होने से तो मौत को गले लगाना अच्छा !

"और ....पर्वत की चोटी पर पहुँच गया ! पर अफसोस ! कि जहाँ नीचे गिरने केलिए सज्ज हुआ कि आकाशवाणी हुई । "सबर ! मौत इतनी सस्ती नही है । भोगावलि कर्मों को भोगने के बाद ही तुम्हारा छूटकारा है । अतः रूक जा ।" हतभागी मुझे ,इस देववाणी ने कायर कर दिया । मैं थम गया । वापस लौटा ! पर ...विकारों के भूत तो मेरे पीछे पडे हुए थे । कैसे भी ये मेरा पीछा नही छोड रहे थे । स्वाध्याय में भी मन नही लग रहा था । ध्यान में भी वे मेरे सामने आते थे ! क्या करूँ ? घोर तप में तपता रहा ,उन दुष्ट भूतों को पराजित करने केलिए....पर निष्फल रहा ।

"उसमें एक दिन इस कामलता के घर चला गया । उस मोहराज ने मुझे यहाँ धक्का लगा दिया । यह एक भूल करके भी मैं रूका नही । कामलता की बातों से जैसे ही मुझे पता चला कि यह तो वेश्या का घर है तो उल्टे पाँव वापस लौट जाना चाहिए था पर मेरा भयानक विनिपात निश्चित था । इसीलिए

मैं उसकी बातें सुनता रह गया । यह मेरी दूसरी भूल । हम अर्थात् मात्र साधक ! हमारे पास कोई चमत्कार नही ! अभी दिखा देता हूँ और ...मैंने दिखा दिया ! उसके बाद भी मुझे फौरन चल देने की जरूरत थी पर पर्वत की चोटी से गिरा कहाँ जाकर रूके ? उसे तो लुढकते ही रहना है ना । कामलता ने मेरे पाँव पकडे और आखिरकार यह पतन हुआ ।"नंदिषेण की आँखके आगे सारा जीवन जल्दी जल्दी गुजर गया ।

विचारमग्न नंदिषेण को यह पता भी नही था कि कामलता कब से उसके पीछे आकर खडी थी । नंदिषेण की दोनों आँखें हाथ से हौले से दबाये मौन खडी थी ।

"और कौन हो सकता है? जिसने मेरे जीवन को पर्वत पर से नीचे लुढका दिया वही तो।" नंदिषेण ने कहा ।

नंदिषेण के शब्दों से उत्तेजित कामलता एकदम सामने आकर खडी हुई; तो किसलिए सोनैयों की बरसात की थी ? भूल आपकी है या मेरी ?" बाजी को पलटने में माहीर कामलता ने कहा :" प्रियतम ! अब अतीत को भूल जाओ । देखिये आपके सामने कितना भव्य वर्तमान खडा है । इस विलासभवन को तो देखिए । अंग अंग से निथरते सौंदर्य युक्त सुंदरियों के चित्र तो देखिए ! और यह सुरा का...."

"खबरदार कामलता...! बीच में रोकते हुए नंदिषेण ने कहा :"सुरा की गंध के आते ही मैं तत्क्षण तुम्हारे भवन से बाहर हो जाऊँगा-इतना अवश्य समझ लेना और सुंदरी ! मैं तुम्हारे जैसी अन्य किसी का सपने में भी विचार नही कर सकता । सुरा और सुंदरी की पगलानेवाली बातें मेरे मन को अधिकाधिक दु:खी करेंगी । इस बात को कभी भूलना नही ।"

कामलता ने सोचा:" यह तो जबरा भोगी मिला पर अब उसे वश में कर लूँ तभी मैं कामलता! अभी अभी ही साधुवेश को छोडा है । अत: जीवन में गहरे उतरे हुए संस्कार एकदम तो कैसे जा सकते हैं ? ये संस्कार ही उसे बुलाते हैं ना पर धीरे धीरे सब ठीक कर दूंगी । मैं तो उसे स्वीकार्य हूँ ही ना ? बहुत हो गया । मर्द अन्यत्र मर्द होगा । स्त्री के समक्ष बातें करने में भी मर्द होगा पर हकीकत में हमारे सामने कितना नामर्द होता है,यह तो हम स्त्रियाँ ही जानती हैं । हमारे कमरे की चार दीवारें ही जानती हैं...ठीक ठीक ,यह तो सब ठीक हो जायेगा ।"

कुछ भी बोले बिना विनीत भाव से चरणों में झूककर , क्षमा याचना करके कामलता ने नृत्य की तैयारी कर ली।

रात्रि के दस बजे थे। नृत्यखण्ड में चारोंओर दीप झिलमिला रहे थे। धूपसलियाँ अपनी सुगंध को मुक्त रूप से फैला रही थी। ढोलकी आदि अपने स्थान पर सजे हुए थे। कुमार नंदिषेण तकिये का सहारा लेकर गादी पर बैठा हुआ था।

नृत्य का आरम्भ हुआ।

कुमार नंदिषेण को रिझाने-पानी पानी कर देने का दृढ संकल्प वेश्या कर चुकी थी। उसका निराशोन्मत्त (आखिरी) खेल (प्रयास) इस पार या उस पार का था।

कुमार नंदिषेण के समक्ष कामलता का वह पहला नृत्य था। ना,ना उसके जीवन का भी वह पहला ही नृत्य था। कईं आये और कईं गये, जेबें खाली करके, पर किसी के भी लिए उसने इस प्रकार अपने तन को निचोडा नही था।

रात बढती चली। कामलता का नृत्यनैपुण्य सोलहों कला से खिलता गया। नृत्य चंद्र पूर्ण हुआ। पूनम का चांद हुआ। ढोलकी भी चकित रह गया। गायिका भी आश्चर्य में डूब गई ! अद्‌भुत नृत्य !

कामलता आज मानवलोक की कामलता नही रही थी। वह तो जिद पर अडी कोई देवांगना थी। प्रियतम देवेन्द्र को रिझाने केलिए। मानो उसके पाँव जमींन पर पडते ही नही थे ; उसकी आँखे पलकें भी झपकाती नही थीं। कुमार नंदिषेण के तेजस्वी तन पर वे आँखें चिपकी हुई थीं। उसके सौंदर्यामृत का वह पान कर रही थी। उसे नही थी प्यास,नही थी थकावट,कुछ भी नही था। सही मायनों में वह नृत्यांगना देवांगना बनी हुई थी।

तकिये को टेककर बैठे कुमार नंदिषेण उस नृत्य में कोई खास रुचि नही दिखा रहा हो,ऐसा कामलता को पहली बार अनुभव हुआ फिरभी इतने मात्र से वह हताश होनेवाली नही थी। "बारह बारह वर्ष के तप से तप्त योगी एकदम भोगी जगत में बस न जाये , इस बात का आश्चर्य नही था और वह जिम्मेदारी तो मेरी ही बनती है ना ? मैंने ही बीडा उठाया है। योगी के योग को निष्प्रभाव कर देने केलिए। काया से ही नही,मन से भी।"

इसीलिए कामलता नृत्यकला की पराकाष्टा पर थी :"मेरा कुछ भी हो जाये लेकिन अपने प्रियतम को तो पानी पानी ही करके बैठूंगी। उसके अंतर के कोने कोने में विराजित विरति की सारी प्रतिमाओं को खण्डित करके उसी अंतर के किसी अनुपयोगी –एकान्त खण्ड में उसका ढेर लगा दूँ।

अन्यथा ? अन्यथा मेरा नाम कामलता नही। अरे ! यदि निश्फलता भी मिली तो ...तो शायद यह विषपायी हीरे को ही चुस लूँ।..तदनंतर जीवन का अर्थ ही क्या है ? कामलता नृत्यरत थी। उसका मन विचारों में खोया हुआ था। कामराज ने पांचों शरसंधान किये हुए थे।

एकाएक तकिये को टेके बैठा कुमार नंदिषेण तन कर बैठ गया। कामलता के अंग अंग कीओर मानों तकता ही रहा और कामलता का अंतरमयूर मानो नाच ऊठा। दाँव सफलता की ओर अग्रसर हो रहा लगता है। अब तो पासे पौबारह !"उसका मन बोल ऊठा :"देखना अब कोई कसर नही छोडना,यदि कसर छोडी तो पछताना पडेगा।"अंतर ने चहुँटी काटकर चिताया।

कामलता ने कुमार पर वशीकरण किया ही था। अब पलटवार रूप वशीकरण मानों कुमार ने कामलता पर किया।

कुमार ने कामलता की देहलता का रूप देखा ! रूप की त्वचा देखी। चमडी के भीतर उसकी आत्मा के प्रदेश आँख और नाक चडाकर आ गये। वहाँ मांस देखकर आँखें मींच दी। चरबी और लहू देखकर आत्मा ने अकुलाहट अनुभव की। अरे ! हम यहाँ कैसे और कहाँ आ गये ? फिरभी ये आत्मप्रदेश घूमते घूमते आगे बढे। उन्हें आज यह सारा प्रदेश समझ-परख लेना था। वे आगे बढे तो कर्कश हड्डियाँ टकराईं ! तो अन्य मार्ग से आगे बढे कि वहाँ भयानक बदबू आने लगी। आँखों ने देखा तो मात्र विष्टा ही विष्टा पडी हुई थी। अजगर जैसी लम्बी अंटियों में पडी आँतों में गंदा पदार्थ पडा था ! आत्मा के प्रदेश त्रस्त हो ऊठे। फिरभी आगे बढे। पिशाबकी थैलियाँ देखी ! बस..बस अब तो कुछ देखना नही है। आँखें मुंद गईं। बदबू को न सह सकनेवाली नाक बंद हो गई। यह क्या ? भयंकर विश्वासघात ! घोखा, नुकसान ! रे कर्मराज ! तुम ने अनंता आत्माओं के संग धोखा किया ! चमडी में ही रंग-रूप भर दिये। मुग्धात्माओं को आकर्षित किया। ठग लिया ! घेर लिया ! हमेशा केलिए तुम्हारे यहाँ बांदी के रूप में बंद कर लिया ? तुमने किसी से बात तक नही की, सबसे छिपाये रखा कि

इस रूप-रंग के अंदर तो दुनियाभर की गंदगी ऊफन रही है ।"अरे मुझे भी भूलावे में डाल दिया !"नंदिषेण की आत्मा व्यथित हो गई ।

जहाँ बडे-बडे ब्रह्मा-विष्णु भूले,जहाँ बडे जटाधारी ऋषि फिसले वहाँ तुम्हारे जैसे मच्छर की तो क्या औकात ! ऐसा तुम कहना चाहते हो ? तो खामोश ! कर्मराज ! अशुचिमय कामलता के घर रहेंगे कदाचित,तो मेरा यह तन ही रहेगा । मन तो सदैव तुम्हारे साथ हिसाब चुक्ता कर देने केलिए खूँखार जंग खेलता ही रहेगा ।

नंदिषेण कामलता को देख रहा था...हाँ, उसने कामलता के सम्पूर्ण स्वरूप को देख लिया था । कामलता की देह के आरपार उतरे हुए आत्मप्रदेश घूम-घूमकर सखेद वापस लौटे ।

नंदिषेण ने निश्वास डाला तब कामलता को पता चला कि कुछ और ही पक रहा हो ऐसा लग रहा है । वह हताश हुई । ढेर होकर नंदिषेण के चरणों में गिर गई ।

खिन्नवदना ने माथा ऊपर ऊठाया और पूछा :"प्रियतम ! आपको जरा भी आनंद नही हुआ?"

"कामलता ! तुम्हारी देह से कितनी दुर्गंध निकल रही है ? कैसे आनंद की तुम बात कर रही हो?"

"अरे कुमार ! सुंदरी के रंग-रूप में तो सुरा की प्यालियों को भी भूला दे ऐसा नशा पडा है । तुम्हारे जैसे कई युवाओं को मैंने इस नशे में पागल करके मेरे तलुए चाटते हुए कर दिया है । मेरे गाल के एक तिल को छूने केलिए तो उन्होंने धन के ढेर कर दिये है । मेरे पैर की मोजडी को भी मस्तक पर रखकर उन्हों ने अपने परम सौभाग्य की पराकाष्टा समझा है ? मेरे प्रेम केलिए तो ऐसे अनेक युवाओं ने अपनी प्रियतमाओं के साथ धोखा किया है । कुमार ! आप अकेले ही ऐसे निकले जिन्हें मुझमें कुछ भी आकर्षक नही लगता !"

मुस्कुराते हुए नंदिषेण ने कहा :"क्योंकि वे सब महावीर के सेवक नही थे और मैं भगवान महावीर का सेवक हूँ । हाँ आज भी ! जो भी उन्हें दिल से स्वामी के रूप में स्वीकार कर लेता है ,उसके अंतर में अन्य कोई भी स्वामी नही हो सकता । वह किसी का दास बनता नही । हो ही नही सकता ।"

"पर मुझे कहाँ आपको मेरा दास बनाना है ? मैं तो तुम्हारी दासी ही बनना चाहती हूँ ! स्वामीपद भले ही भगवान महावीर को मिले पर दासीपद तो अभी तक शेष है ना ! वह तो मुझे दीजिए ,यह अबला आपका

दासीपद ही चाहती है। वह उसे मिल जाये तो त्रिभुवन का पद भी उसे स्वीकार्य नही है। वह उस पर भी थू करती है।" कामलता ने कहा।

नंदिषेण ने कहा :" रे ! लुच्ची ! क्यों मेरे साथ ठगी करती है ? अभी तुमने मुझे पहचाना नही है ? पुनः तुम मुझे इसी तरह ही पहचान लो कि मैं आज भी भगवान महावीर का शिष्य हूँ। उस माता की हितशिक्षा का दूध पीकर मैं बलवान बना नरवीर हूँ। मोह की कपट नीतियों से तो मैं पूर्णतया वाकिफ हूँ। तुमने अभी कहा ना कि आज तक तुमने कई युवाओं को तुम्हारे सौंदर्य की सुरा का पान करवाकर पागल बनाया है ?और तुम्हारे चरणों को चूमनेवाले दास बना दिये हैं। मुझे कहो तो ? इन सब की तो तुम दासी ही थी ना। अरे भूला ! दासी ही कहलवाती थी ना। अतः यह बात स्पष्ट हो जाती है कि

तुम्हारे दासीपद में ही तुम्हारा स्वामीपद रहा है। तुम दासी –तुम स्वामिनी ! ठीक है

ना यह गणित ! जिस प्रकार हमारी आध्यात्मिक दुनिया का एक गणित है -शून्य –पूर्ण।"

खिसियायी हुई कामलता के मन में यह अहसास हो गया कि "यह कोई विचित्र माया है। शिकार हाथ तो लगा ,पर अब हाथ से निकल न जाये तो अच्छा। सच्चा प्रियतम तो यही कहलाये ,जो प्रियतमा को दूर दूर तक टालता रहे और प्रेम का आनंद तो त्याग करने में ही माना जाता है ना। मुझे तो ऐसा प्रेमी चाहिए। जो मेरा तिरस्कारपूर्वक त्याग करे। अब मुझे अपना कार्यक्षेत्र समझ लेना है। मुझे ही अपनी योजना का ढाँचा तैयार करना है।" पैर छूकर कामलता बिदा हो गई। दिन पर दिन बीतते जा रहे हैं। महिने पर महिना चढता जा रहा है। वर्ष के पीछे वर्ष चला आता है।

कुमार नंदिषेण का नित्य क्रम बनता है। सुबह होते ही प्रतिक्रमण करके परमात्मा की अष्टप्रकारी पूजा ,तत्पश्चात् उस रास्ते पर से गुजरनेवाली दस भव्यात्माओं को प्रतिबोध करने का कार्य। बाद में भोजन और आराम ,तत्पश्चात् सामान्य वार्ता-विनोद। बाद में शास्त्र-स्वाध्याय ,प्रतिक्रमण और बारह भावनाओं का चिंतन करते हुए शयन।

कामलता वेश्या मिटकर अब नंदिषेण की प्रियतमा हुई है। उसके अंतर में अब किसीको बसने का अधिकार उसने दिया नही है।

मगधवासियों में यह बातें चलती हैं कि :"मगधेश्वर के पुत्र नंदिषेण का बारह वर्ष के उग्र तप-संयम के पालन के बाद पतन हुआ। वेश्या के घर रहा है पर आश्चर्य की बात यह है कि वेश्या के घर रहकर वह रोज दस आत्माओं को विरति के पंथ पर चढाकर ही भोजन करता हो तो उसके अंतर में कौन बसा है ? कामलता या भगवान महावीर ?"

सब एक दूसरे से पूछते हैं :"नंदिषेण भोगात्मा या योगात्मा ! समझदार लोग उत्तर देते हुए कहते हैं :"उसकी समग्र दिनचर्या को देखते हुए कहा जा सकता है कि उसकी देह वेश्या के मंदिर में पडी है। अतः वह भोगात्मा कहलायेगी परंतु उसका जीव तो भगवान महावीरस्वामी के आसपास ही भ्रमण करता रहता है। अतः वह योगात्मा कहलायेगी। यही नही ,वह योगात्मा ही कहलायेगी। भोगात्मा नही कहलायेगी। भोग में रहते हुए भी वह भोग में रमता नही है फिर भोगी कैसे ? जहाँ चित्त योग में ही रमता रहता है वहाँ शरीर भले ही वेश्या के मंदिर में पडा हो, फिरभी वह तो निष्प्राण ही ना ? उसे लाश ही कहो ना ? ऐसी स्थितिवाली आत्मा तो अनासक्त योगी ही कहलायेगी,योगात्मा ही कहलायेगी।

इसीलिए तो वह भव्यात्माओं को प्रतिबोधित कर सकता है। मुनिवेष में रहकर किसी संसारी आत्मा को बोधित करने से से अच्छा वेश्या के यहाँ रहकर विरति की बातें की जाये ,दस-दस आत्माओं को रोज संसार से विरक्त करने की वह रीति तो जबर्दस्त विराग चाहती है। अन्यथा फटाक से प्रतिप्रश्न न कर दे कि, "तो आप किसलिए वेश्या के घर में बैठे हो ? पर किसी में यह पूछने का साहस ही नही। कैसी होगी विराग की बातें करने की शैली !"

समूह में रहकर बातें करनेवालों में संजय भी था। वह बोल ऊठा:"मैंने तो अपनी इन सगी आँखों से देखा है,कुमार नंदिषेण को प्रतिबोधित कराते हुए ! एक भव्यात्मा को वह उपदेश दे रहे थे तब मैं वहाँ जा पहुँचा था। उन्होंने क्या तो मानव-जीवन की दुर्लभता समझायी है ! सीधे हृदय में उतर जाये ! फिर कर्मराज की कुटिलता,पापकर्मों के घोर विपाक (परिणाम) समझाये ! नारकगति के दुःखों का जब वर्णन किया तब तो भाई ,बडे-बडे भी कांप ऊठे और तत्पश्चात् अपनी जीवनकथा कही। अहा ! क्या बात करूँ ? कामलता ने उन्हें फँसाने की बातें उन्होंने बतायी तब तो कईंबार वे निःश्वास छोडते थे और फिर अपने दुष्कृत्यों की निंदा करते थे तब तो आँखों से अस्खलित आँसु बह जाते थे। अंतर अति व्यथा का अनुभव करता था। सुननेवाले को भी दया आ जाती थी। बाद में नारी के स्वरूप का दर्शन

कराते थे। धनलोभ से होनेवाली जीव की स्वार्थान्ध मनोदशा का निरूपण करते थे। संक्षेप में वे जो बात करते थे उसका तादृश चित्र उपस्थित करते थे। मित्रो ! उनके पास हृदय की ही भाषा है। उनके पास हृदय मात्र ही है। हमारे जैसी कुटिल बुद्धि केलिए तो वहाँ कोई नामोनिशाँ नही है।"

संजय की बातें सुनते ही वृद्धजन कह ऊठे :"आपने जो भी कहा वह एकदम सही बात है। हमने भी ऐसी ही थोडी बहुत कल्पना कर रखी थी।"

मगध के गली-मुहल्लों में बारबार कुमार नंदिषेण के विषय में बातें चलती रहती थी। सब लोग उनके जीवन को भावपूर्वक झूक झूककर प्रणाम करते थे।

बारह वर्ष बीत गये।

एक दिन उदित हुआ। सच में कुमार केलिए तो वह स्वर्णिम दिवस था।

नित्यक्रमानुसार भव्यात्माओं को प्रतिबोधित करते रहे। नौ भव्यात्माओं ने तो संसार का त्याग भी कर दिया। दसवाँ कुछ जडमति निकला। सारी बातों के अंत में उसका एक ही प्रश्न रहता था।"तो फिर आप यहाँ क्यों बैठे हैं ?"

"भाई अकर्मी (भाग्यहीन) हूँ ...क्या करूँ ?" नंदिषेण दु:खपूर्ण हृदय से जवाब देते थे ,पर सच्चा हत्भागी तो वह था ,जिसे इस जवाब से संतोष नही होता था।"

बारह बजे। कामलता आयी।"अब तो ऊठिये। खाना ठण्डा होने लगा है।"

"यह दसवाँ प्रतिबोधित हो जाय तब तक। आज का काम मुश्किल लगता है। अत: विलम्ब तो होगा ही।"नंदिषेण ने कहा।

"तो कोई बात नही,ऐसा कीजिए ! आप तो नित्य प्रतिबुद्ध ही हैं ना? आज आप ही दसवें।" मजाक करते हुए कामलता ने कह दिया।

इतना सुनते ही नंदिषेण गम्भीर हो गये। उस जडमति को छोडा। तुरंत खडे हो गये। "कामलता ! लो आज ऐसा ही करता हूँ। दसवाँ कोई न मिले तो मैं तो तैयार हूँ ही।"

"पर...पर यह तो मजाक..."

मजाक-वजाक कुछ नही । तुम जो कहती हो वह सही है । समझदार स्त्री का मजाक भी सच्चा होता है । "कामलता जाता हूँ ,जीवन को उज्जवल बनाना ।"

"अनेकों के जीवन को देदीप्यमान करना । भोगी नंदिषेण तुम्हारा उपकार मानता है । तुमने मुझे संभालकर जगाया । मैं उस उपकार को कभी नही भूलूंगा ।"

मुनिवेश की गठरी नीचे उतारी । एक के बाद एक वस्त्र पहनते गये । पगलायी हुई सी कामलता सिसक सिसककर रुदन करती है पर नंदिषेण की आत्मा उस रुदन को सुनती नही है । आत्मा के कान नही होते ।

"धर्मलाभ "कहकर महात्मा नंदिषेण गम्भीरता केसाथ कदम धरते हुए बढ रहे हैं । जब तक दिखाई दिये तब तक कामलता देखती रही । उसी वक्त कामलता के भवन में लटक रहे स्वर्णपिंजर की खिडकी खुल गई और तोता ऊड गया ।

90. युद्ध का अंजाम

इंग्लैंड स्थित वेल्स यूनिवर्सिटी के एक प्राध्यापक थे । वे एक दिन विद्यार्थियों को पढा रहे थे। विद्यार्थियों ने प्राध्यापक से पूछा :"साहब ! यदि तीसरा विश्वयुद्ध हुआ तो उस महासमर के अंजाम के बारे में आप क्या मानते हैं ? क्या रशिया या अमरिका जैसी महासत्ताएँ अपने शत्रु का नाश करके समग्र विश्व पर अपनी हकूमत चलायेंगी ? या दोनों महासत्ताओं का सर्वनाश हो जायेगा ? यदि ऐसा हुआ तो दोनों महासत्ताओं द्वारा वैज्ञानिक शक्ति द्वारा किया गया परिर्वतन सर्वथा निष्फल हो जायेगा?"

मुस्कुराकर प्राध्यापक ने कहा : "इस प्रश्न का जवाब मैं एक छोटी सी कथा के द्वारा दूंगा ।"

अफ्रिका के जंगल में किसी एक पेड पर बंदर दंपति बैठा हुआ था । जंगल कीओर अनिमेष दृष्टि से सब देख रहा था । उस समय किसी ने उन्हें खबर दी कि शहरों में रहनेवाली मानव आबादी ने ऐसा

बम बनाया है कि यदि उसका विस्फोट हुआ तो सारा संसार खत्म हो जायेगा। मानवबस्ती जैसा कुछ रहेगा ही नही। जो भी लडाई हो वह मात्र पांच या दस मिनट ही चलेगी क्योंकि उसके बाद पक्ष या विपक्ष का कोई लडनेवाला रहेगा ही नही।"

"यह सुनकर बंदरिया खूब रोने लगी। उसने अपने पति बंदर से कहा :"अररर ! क्या समग्र विश्व का नाश हो जायेगा ? जिस मानव जाति ने अतिसुंदर विश्व की रचना की है ,उसी मानवजाति ने विश्व का सर्वनाश कर देनेवाले बम का भी आविष्कार किया है ? ऐसा किसलिये किया होगा ? मेरा हृदय तो सुंदरतम नगर आदि के सर्वनाश हो जाने मात्र की कल्पना से ही रो ऊठता है।"

"कपिराज ने कहा : "अरे ! क्यों तुम व्यर्थ ही रो रही हो। ये मरनेवाले नही रो रहे हैं (चिंता नही करते) और तुम रो रही हो। क्या ये बम हमारे जंगल पर गिरनेवाले हैं ? तुम्हें रोने की जरा भी जरूरत नही है।"

बंदरिया ने कहा :" मुझे मेरे मरने की चिंता नही है पर यह मानव जाति मात्र दस ही मिनट में अपना अस्तित्व गँवा देगी ,उस दु:ख के कारण मैं रो रही हूँ।

जोर जोर से हँसते हुए कपिराज ने कहा :"उसकी तुम जरा भी चिंता नही करना। यदि इस जगत में हम दो ही जिंदा रह जायेंगे तब भी समग्र मानव जाति को पुन: पैदा कर सकेंगे। क्या तुम नही जानती कि समग्र मानव जाति हम बंदरों की ही वंशज हैं ?"

इंग्लैंड में वेल्स यूनिवर्सिटी के प्राध्यापक ने सवाल पूछनेवाले विद्यार्थी से कहा :"इस व्यंग्यकथा पर से तुम समझ लो कि युद्ध का अंजाम कैसा होगा !

"जब अर्जुन हिमालय कीओर जीवन का अंत लाने केलिए जा रहा था तब किसी यक्ष ने उसे सलाह दी कि उसके पास जो गांडिव नामक धनुष्य है , उसे नजदीक के सरोवर में डूबो देना चाहिए। अन्यथा भविष्य में उसका भयानक रूप से उपयोग होने की सम्भावना है।"

और हकीकत में अर्जुन ने वैसा ही किया।"

बुद्धिमान समझी जानेवाली आज की यह मानवजाति क्या अर्जुन का अनुकरण करने केलिए तैयार होगी ? यदि नही तो आपघात के सिवा कोई चारा नही है।

91. जमालि प्रथम विद्रोही साधु

जमालि परमात्मा महावीरदेव की संसारी अवस्था की बेटी प्रियदर्शना की संसारी अवस्था का वह पति था। उसने प्रभु महावीरदेव की वैराग्यवाणी सुनकर पत्नी प्रियदर्शना केसाथ दीक्षा ग्रहण कर ली। दीक्षा लेने के बाद पांचसौ साधु और एकहजार साध्वीजियों के वे अधिपति हुए। एकबार विहार करते हुए यह जमालिमुनि श्रावस्ती नगरी में पधारे।

वहाँ एक दिन किसी वजह से अधिक आहार लेने के कारण बुखार चढा। बुखार से अस्वस्थ हुए जमालि ने अपने शिष्य से कहा :"संथारा कर दो। मुझे सोना है।"

एक कोने में शिष्यों ने संथारा करना शुरू किया। इस तरफ जमालि संथारे के पास पहुँच गये। पहुँचकर पूछा कि : "क्या संथारा कर दिया ?"शिष्यों ने जवाब दिया :"हाँ संथारा हो गया। जब जमालि संथारे के पास पहुँचे तो पाया कि अभी संथारा हो रहा है। उस वक्त उनके मन में विचार आया कि प्रभु महावीरदेव कहते हैं कि "जो कुछ भी हो रहा है ,वह हो चुका ऐसा कहलाता है।"और यहाँ अनुभव से जो दिखता है कि ,"जो हो रहा है वह हुआ नही है।"

इस विचार के बाद जमालि ने मन ही मन निर्णय कर लिया कि प्रभु महावीरदेव इस विषय में गलत हैं और जो एक बात में गलत हो उसे जैनशास्त्र की दृष्टि में सर्वज्ञ नही माना जा सकता। बस तो,प्रभु महावीरदेव सर्वज्ञ नही हैं। मैं ही सर्वज्ञ हूँ।

जमालि मुनि ने "बहुरथ" नामक पंथ की शुरूआत की। उस पंथ में परमात्मा की संसारीपने की पुत्री साध्वीजी प्रियदर्शना जी भी जुडीं। अनेक लोग उसमें जुडे।

परंतु परमात्मा महावीरदेव के परमभक्तों में से ढंक नामक एक कुम्हार ने उस पंथ से समझा-बुझाकर वापस लौटा लिया। साध्वी प्रियदर्शना को एक टोटके द्वारा सत्य का अहसास कराकर परमात्मा के पास वापस भेज दिया। साध्वीजी प्रियदर्शना ने अपनी कृत भूल का प्रायश्चित किया।

पर जमालि मुनि अपनी उस मिथ्या मान्यता को पकडे रहे। एकबार बैचैनी अनुभव कर रहे जमालि मुनि ने श्रावस्ती में परमात्मा महावीरदेव के पास जाकर कहा :"असली तीर्थंकर मैं हूँ ,आप नही

हैं क्योंकि आप को सत्य पदार्थ का खयाल नही है ।" त्रिकालदर्शी परमात्मा तो मौन ही रहे परंतु वहाँ खडे गौतम गणधर ने जमालि को वार्तालाप द्वारा निरुत्तर कर दिया । फिरभी अपनी मान्यता में दृढ रहकर जमालि मुनि वहाँ से चल दिये । लोक में अपनी कीर्ति फैलाने केलिए उन्होंने उग्र तप शुरू किया।

आखिरकार पंद्रह दिन की आराधना करके छठे देवलोक सिधार गये ।

इस प्रकार जमालिमुनि परमात्मा महावीरदेव के संघ में निह्नव (विद्रोही) के रूप में घोषित हुए। बुद्ध के खिलाफ उनके पुत्र देवदत्त प्रथम संघ भंजक हुआ था, उसी प्रकार,जैनसंघ में परमात्मा महावीरदेव के विरुद्ध उनके संसारीपने के जमाई जमालि प्रथम संघभेदक हुए । यह भी कैसा योगानुयोग !

92. कर्ण की वफादारी

अजैन महाभारत में वर्णित यह प्रसंग है ।

कर्ण एकदा सूर्य की उपासना कर रहे थे । अपना उत्तरीय वस्त्र नीचे रखकर सूर्य के समक्ष अपने दो हाथ जोडकर उन्होंने मंत्रजाप प्रारम्भ किया । अपनी बात कहने केलिए माता कुन्ती ने इस मौके को हाथ में ले लिया । वह जानती थी कि सूर्य की उपासना करने के बाद जो भी व्यक्ति सबसे पहले कर्ण के समक्ष अपनी मांग रखे ,उसे कर्ण हमेशा पूर्ण करते थे । कुंती को भी मांगना ही था । अतः वह नदी के तट पर चूपचाप आकर बैठ गई । अपने पुत्र कर्ण पर आ रहे ताप से बचाने केलिए कर्ण का उत्तरीय वस्त्र हाथ में लेकर ऊपर ऊठाया । जिससे कि कर्ण को छाँव मिले ।

काफी देर तक कुन्ती इस अवस्था में रही । मंत्रजाप पूरा हो जाने के बाद कर्ण ने उस स्त्री की ओर देखा और उन्होंने पूछा :"तुम कौन हो ? मेरी सेवा किस लिये की ?" कुन्ती ने जवाब देते हुए कहा :"मैं तुम्हारी माता कुन्ती हूँ । बेटा ! घर चलो । तुम आज तक खुद को "राधेय" कहता रहा है । बेटा ! तुम राधा के पुत्र नही हो । मेरे,कुन्ती के पुत्र हो ।"

कर्ण ने गम्भीरता धारण करके कहा ;"माँ ! मैं कौन्तेय कहलवाना पसंद नही करता। जिस माँ ने मुझे जन्म लेते ही अपने पुत्र को बिना किसी अपराध के नदी की धारा में प्रवाहित कर दिया।- ऐसी नीच माता के पुत्र के रूप में मैं कोई गौरव अनुभव नही कर रहा। माँ ! ये कुछ क्षण मिले हैं। उसमें मैं प्रेम कर लेना चाहता हूँ। तुम बाकी सारी बातें छोड दो और कुछ पलों केलिए कौन्तेय केरूप में चैन से तुम्हारी गोद में सो लेने दो। बाद में तो मैं पुनः राधेय हो जाऊँगा। उस राधा ने ही मुझे पाल-पोषकर बडा किया है। जिन्दा रखा है। अतः मैं राधेय हूँ।" "पर बेटे ! मैं तो कुछ मांगने केलिए आयी हूँ ,उसका क्या ?"

कुन्ती के स्वार्थ की बू कर्ण को आ गई थी तथापि उसने कहा :"मंत्रजाप पूर्ण करने की मेरी प्रतिज्ञा है। माँ ! जो मांगना हो मांग लो।" "बेटा ! तुम पाण्डव हो। तुम पाण्डुपुत्र हो। तुम्हें पाण्डवों केसाथ रहना चाहिये। यदि तुम दुर्योधन के पक्ष में रहोगे तो पाण्डवों का नाश होगा। तुम्हारे अतिरिक्त दुर्योधन की सेना में पाण्डवों में से किसी एक को मारने का सामर्थ्य नही है। पाण्डव तो पांच ही रहने चाहिए। अतःबेटा ! तुम दुर्योधन का पक्ष छोड दो।"

कर्ण ने कहा :"जिसका अन्न खाया है उससे बेवफा होने का सामर्थ्य मुझ में नही है पर मैं तुम्हें एक बात अवश्य कहता हूँ कि पाण्डव तो सदैव पांच ही रहेंगे। पांच में से कभी एक भी कम नही होगा। बोलो तुम्हारी भावना तो पूर्ण हो ही रही है ना ?"

कर्ण के इस विधान में कोई भेद रहा है ,यह जानकर कुन्ती ने स्पष्टता चाही। कर्ण ने कहा :" माँ! इसका अर्थ यही है कि यह तुम्हारा पुत्र कर्ण ऐसा कहता है कि यदि मौका मिला तो वह अर्जुन का वध अवश्य करेगा और यदि मौका नही मिला तो अर्जुन कर्ण का वध कर देगा। अब कर्ण मरे या अर्जुन मरे , दो में से एक मरे तो पाण्डव तो पांच ही रहेंगे क्योंकि कर्ण भी पाण्डव होने के कारण अब पांच नही हैं। तुम्हारे ही कथनानुसार पाण्डव अब छह हैं। कहो माँ ! अर्जुन को तो मैं छोडूँगा नही,शेष चार को आज से मेरा अभयवचन है। अर्जुन मरे तो भी क्या और कर्ण मरे तो भी क्या ? पाण्डव तो पांच ही रहेंगे। माँ ! जाओ ! "पाण्डव पांच ही रहने चाहिये।"तुम्हारी इस इच्छा का मैं नत मस्तक होकर स्वीकार करता हूँ।" बेचारी कुन्ती शब्दजाल में फंस गई। निराश वदन,टूटते हुए पाँव,निराश होकर नदी के किनारे को छोडकर चली गई।

93. छह लेश्याएँ

जैन शास्त्रों में बालकक्षा की भद्रकपरिणामी जीवों को समझाने केलिए अत्यंत सरल भाषा में छोटी छोटी रूपक-कथाएँ दी गई हैं। मनुष्य के स्वभाव में छह प्रकार होते हैं। एक क्रोधी व्यक्ति ही क्रोध के छह प्रकार के तारतम्य (भेदवाला) हो सकता है। यह बात प्रत्येक गुण या अवगुण में लागू की जा सकती है। हम यहाँ छोटी सी रूपककथा देखेंगे जो इसी बात को सुंदर ढंग से समझाती है।

एकबार छह मित्र अपने गाँव से अन्य गाँव जाने केलिए निकले। रास्ते में जंगल आया। उस जंगल से बाहर आते आते दो पहर के बारह बज गये। उन्हें सख्त भूख लगी। कुछ फल-वल मिल जाये तो खाने की उनको इच्छा हुई।

उनके सद्भाग्य से उस समय जामुन का बडा पेड उन्होंने देखा। वह जामुन से लदा हुआ था। धरती पर भी अनेक जामुन गिरकर बीखरे पडे थे। इस पेड को देखकर उन छहों लोगों के मन में जो विचार आया उस पर हम गौर करेंगे।

जो क्रूर चित्त परिणामवाला (कृष्णलेश्यावाला) था ,उसने कहा :" हमें जामुन खाने हैं।,अतः जड से ही पेड को ऊखाडकर पेड को नीचे गिरा देते हैं और भरपेट खाते हैं।"

उससे कुछ कम क्रूर परिणतिवाले (नीललेश्यावाले) ने कहा :" समूचे पेड को काटने की क्या जरूरत है। हम पेड के तने को रहने देते हैं, तने के ऊपर की टहनियाँ-पत्तों को काट डालते हैं। तना रहेगा तो पुनः नया पेड उगेगा।"

उससे भी कुछ क्रूर परिणतिवाले (कापोत लेश्यावाले)मनुष्य ने अपना विचार प्रस्तुत करते हुए कहा :"तने के ऊपर की टहनियाँ और पत्तों को काटने की क्या जरूरत है ? हमें तो जामुन ही खाने हैं ना ! तो बडी-बडी शाखाओं को ही काटते हैं।

चौथे नम्बर के कुछ अच्छे (तेजो लेश्यावाले) व्यक्ति ने कहा :"ना,ऐसा भी किसलिए ? जिन छोटी-छोटी डालियों पर जामुन लगे हुए हैं,उन्हें ही हम काटेंगे।"

उससे भी कुछ अच्छे (पद्मलेश्यावाले) व्यक्ति ने कहा :"ना, ऐसा भी क्यों किया जाये? डाली तोडने

की भी क्या जरूरत है ? हमें मात्र जामुन का घौद ही तोडना चाहिए और भरपेट जामुन खायेंगे ।"

छठे और बहुत अच्छे (पद्म और लेश्या शुक्ल लेश्यावाले) व्यक्ति ने कहा :""भाईओ ! इस पेड के सुंदर और पके हुए जामुन अपने आप ही जब धरती पर बीखरे पडे हों तब जामुन का घौद तोडने की क्या जरूरत है ? हम अघा अघाकर खायें तो भी बच जाये उतने जामुन चारोंतरफ बीखरे पडे हैं ।"

कृष्ण लेश्या,नील लेश्या,कापोत लेश्या,तेजो लेश्या,पद्म लेश्या और शुक्ल लेश्या –ये हैं जीवमात्र की विभिन्न परिणितियाँ जब कि पेड अनेक पक्षियों का आश्रयस्थान हो ,जब अनेक यात्री उसके नीचे विश्राम करते हों, जब अनेक भूखे पक्षियों को वह पेड जामुन के फल भोजन के रूप में देता हो ,जब वह पेड अनेक पक्षियों को घोंसला बनाने देता हो ,ऐसे हजारों के आधार रूप उस पेड का अपने स्वार्थ केलिए अंशतः नाश भी कैसे किया जाये ? तो फिर जडमूल से ही उसका नाश कर देने का विचार तो कितना अधम और कायरतापूर्ण कहलाये ?

जीवन में अन्य का अहित करके स्वहित की साधना करना जरा भी उचित नही है। वस्तुतः इन्सान को स्वयं घिसे जाकर भी अन्य का हित करना चाहिये । यही है आर्यपुरुषों के संस्कार । ऐसा होना चाहिये हमारा जीवन !

94. बैजु बावराः शत्रुता को मारो, शत्रु को नहीं

बादशाह अकबर के प्रियातिप्रिय गायक तानसेन ने तत्कालीन गायक बैजु बावरा के पिता को कईंबार संगीत-स्पर्द्धा में पराजित किया था , कुछ अन्याय भी किया था । अतः बैजु बावरा के पिता तानसेन केप्रति बैर अनुभव करने लगे लेकिन एक दिन उसकी मौत नजदीक देखकर बैजु को बुलाकर उसके पिता ने कहा :"मेरे जीवन की एक ईच्छा अधूरी रह जाती है । उस ईच्छा को तुम्हें पूर्ण करना है कि मेरे प्रतिस्पर्द्धी तानसेन को तुम खत्म कर दोगे ।"

बैजु ने अपने पिता की ईच्छा पूरी करने हेतु प्रतिज्ञा की । पिता की मृत्यु हो गई । बैजु बावरा

तानसेन को खोजने के लिए मौका तलाशने लगा। एक दिन जब वह हाथ में खंजर लिये निकला तब तानसेन माँ सरस्वती के मंदिर में बैठा हुआ था। "माँ " में एकाकार तानसेन को देखकर बैजु वहाँ से बिदा हो गया।

रास्ते में मंदिर आया। मंदिर में जाकर भगवान के दर्शन किये। सद्भाग्य से बैजु के मन में विचार आया कि "मैं अपना जीवन परमात्मा को ही समर्पित कर दूँ तो ? अपनी संगीत विद्या इसी के चरण में समर्पित कर दूँ तो ?"और तब से बैजु भगवान के पीछे पागल हो गया। उसका संगीत अद्भुत होता चला। बेजोड गवैये के रूप में वह विख्यात हो गया।

उसकी ख्याति सुनकर अकबर ने तानसेन से कहा :" एक दिन बैजु बावरा को इस राजसभा में ले आओ। मुझे उसका संगीत सुनना है।"

"जहाँपनाह ! बैजु भगवान के सिवाय किसी के समक्ष गाता नही है । यदि आपको उसका संगीत सुनना है तो मंदिर में जाना ही होगा।" –तानसेन ने कहा।

एक दिन वेष-परिवर्तन करके बादशाह अकबर तानसेन केसाथ जंगल में स्थित मंदिर में गया। बैजु परमात्मा में तन्मय होकर गा रहा था। अतः अद्भुत संगीत सुनकर अकबर तो झूमने लगा। जब संगीत पूर्ण हुआ तब तानसेन ने बैजु को बाहों में भर लिया। बैजु ने पूछा –"कौन हैं आप ?" तानसेन ने जवाब दिया, "मैं तानसेन हूँ।"

और हर्षित भावपूर्वक खडे होकर बैजु तानसेन से गले मिल गया और कहा :" मेरे पिता की आज्ञा आज पूर्ण हुई। पिता ने मुझे कहा था कि मेरे शत्रु को मार डालना। आज मैंने अपने शत्रु को मार डाला है। तलवार से नही पर प्यार से। उसकी शत्रुता को खत्म करके मैंने उसे मित्र बनाया है। आज मेरा अपूर्व सूर्योदय(पुण्योदय)जगा है।"

तब से तानसेन और बैजु बावरा अभिन्न मित्र हो गये।

यथार्थ में अब तानसेन शत्रु के रूप में मरकर मित्र हो गया था।

95. ऐसा साधु वेष किस काम का?

सुबंधु चाणक्य का समकालीन मंत्री था । उसमें मंत्री होने की महत्वाकांक्षा बहुत तीव्र थी । चाणक्य इस बात से अनजान नही था । राज्य के किसी षड्यंत्र का शिकार होकर जीवन बरबाद करने से बेहतर चारित्र लेकर आबाद क्यों न किया जाये ? उस विचार से चाणक्य ने चारित्र का स्वीकार किया । अब सुबंधु ने मंत्रीपद सम्हाला । चाणक्य का कांटा जड से ही ऊखाड फेकने की उसकी भावना थी । अतः वह मुनिवेष में रहे चाणक्य को जीने देना चाहता नही था ।

एक दिन चाणक्य मुनि की सेवा करने की आज्ञा लेकर सुबंधु जंगल में गया । चाणक्य ध्यानस्थ मुद्रा में खडे थे । उसने आसपास उपले सजाकर ,धूप और दीप प्रकटाकर मानो कि वह सेवा कर रहा है ,ऐसा छल किया । कुछ क्षणों बाद प्रज्वलित दीपक को उन उपलों में दाग दिया । आग लगी । चाणक्य मुनि परमात्मा के ध्यान में लीन होकर कालधर्म को प्राप्त हुए ।

हाश ! अब तो वह जड से गया ऐसा सोचकर सुबंधु चाणक्य की हवेली में गया । सीधा तिजौरी के पास गया और तिजौरी से अनगिनत धन हासिल कर लेने केलिए उसने उस तिजौरी को खोला । तिजौरी में से एक चाभी मिली । उससे अंदर का एक दराज(खाना) खोला । उसमें से भी एक चाभी मिली । उससे अंदर का एक खाना खोला।...ऐसा करते करते उसे सात चाभियाँ मिली और सात खाने खोले । सुबंधु अतिहर्षित था । उसने सोचा कि अतिमूल्यवान चीज को छिपाया होगा जो मुझे सातवें खाने से मिलेगी ।

सातवें खाने में एक डिबिया थी । उसने उसे खोला । उसमें से बहुत खुशबू आ रही थी । उसने नाक से लगाकर उस खुशबू का आनंद लिया कि उसकी नजर उस खाने में पडे एक कागज पर गई ।

उसने कागज लेकर उसे पढा । कागज में लिखा था कि "इस खाने में पडी हुई डिबिया को लेकर जो उसकी सुगंध का आनंद लेगा ,उसकी एक ही दिन में मौत होगी । अपवाद मात्र इतना ही कि यदि वह किसी स्त्री का स्पर्श नही करेगा, अग्नि और पानी का सेवन कभी नही करेगा तो अवश्य बच जायेगा ।"

यह कागज पढते ही सुबंधु के होश ऊड गये । वह मन ही मन बोला ,"नालायक मर तो गया पर

मुझे भी मारता गया। अब तो तीन शर्तों के पालन केलिए मुझे जैन साधु हुए बिना कोई चारा नही है। कितना कठोर होता है यह साधु जीवन परंतु उससे भी भयानक है एक दिन में होनेवाली मौत। इन दो में से विकल्प पसंद करना हो तो मुझे साधुजीवन जीने का विकल्प ही पसंद करना चाहिये।"

और सचमुच सुबंधु ने जैन साधु का भेष धारण कर लिया। उन शर्तों का पालन करना शुरू किया और जीवन पूर्ण किया।

जैन शास्त्रकारों का कहना है कि इस सुबंधु को जैन साधु कैसे कह सकते हैं ?

96. तीर्थरक्षक सेठ शांतिदास

सेठ शांतिदास के पूर्वज मेवाड के सिसोदिया वंश के क्षत्रिय थे। उनका इतिहास पद्मसिंह ठाकुरसिंह से प्राप्त होता है। शांतिदास सेठ उस पद्मसिंह की छठी पीढी में हुए सहस्त्रकिरण के पुत्र थे। शांतिदास का जब व्यापार काल आया तब वे व्यापार के क्षेत्र में हीरे की तरह झगमगा ऊठे थे। देशविदेश में उनका कारोबार होने पर भी धर्म को उन्होंने अपना एक अंग बनाया था। परमात्मा के दर्शन किये बगैर वे मुँह में कभी पानी तक डालते नही थे।

व्यापार में आगे बढते बढते दिल्ली के मुगल बादशाह के झवेरी के रूप में स्थापित हो गये। तब उनकी अवस्था मात्र पच्चीस वर्ष की थी। बादशाह अकबर के पुत्र सलीम के कारण उसकी माता जोधाबाई से अकबर की अनबन हुई। तब गुस्से में आकर दिल्ली का त्याग कर रही जोधाबाई को उनका भव्य आदर-सत्कार करके अहमदाबाद में आश्रय दिया। अतः जोधाबाई ने सेठ शान्तिदास को अपना भाई माना था।

सलीम शांतिदास को जौहरीमामा कहने लगा था।

अंततः पिता के साथ सलीम का समाधान हुआ। जोधाबाई पुनः दिल्ली आ गईं। बादशाह

अकबर ने शांतिदास पर प्रसन्न होकर अहमदाबाद के नगरसेठ के रूप में नियुक्त किया।

एक बार मुक्तिसागरजी महाराज की प्रेरणा से पंद्रहहजार लोगों का शत्रुंजय का संघ शांतिदास ने निकाला। जिसमे अकबर ने सारी सुविधाए मुहैया करायी थी।

एकबार अहमदाबाद में सुंदर जिनालय का निर्माण करने की भावना सेठ को हुई। बादशाह अकबर से सम्मति पाकर नवलाख मुद्रा खर्च करके मेरुतूंगप्रासाद का निर्माण किया। मूल नायक के रूप में चिंतामणि पार्श्वनाथ को विराजमान किया। वाचकेन्द्रमुनि ने उस जिनप्रासाद की प्रतिष्ठा की थी।

१६२५ में मंदिर का निर्माण संपन्न हुआ। बीस वर्ष तक तो सबकुछ बहुत ठीकठाक चला क्यों कि ये दो दशक अकबर और जहाँगीर के थे।

तत्पश्चात् शाहजहाँ गादीनशीन हुआ। शांतिदास को तीर्थरक्षा की बहुत चिंता होने लगी। १६४५ में शाहजहाँ ने औरंगजेब को अहमदाबाद के सूबे के रूप में नियुक्त किया। वह अति धर्मांध था। उसे सेठ शांतिदास द्वारा निर्मित मेरुतुंगप्रासाद के प्रति बहुत नफरत थी। एक दिन उसने उस मंदिर को तोडकर मस्जिद बनवाने का हुक्म कोतवाल को दिया।

इस बात का पता चलते ही सेठ ने औरंगजेब से मिलने के निष्फल प्रयत्न किये। सेठ शांतिदास ने अन्य लोगों के मारफत कहलवाया कि "मेरी सारी सम्पत्ति लेकर भी इस मंदिर को बक्ष दीजिए।" वह मुझे प्राण से भी प्रिय है लेकिन वह नही माना और रातोंरात उस मंदिर को मस्जिद में परिवर्तित कर दिया। शांतिदास सेठ का सद्भाग्य था कि इस दशा में आ जाने से पूर्व उन्हें मंदिर की सारी मूर्तियाँ हटा लेने का मौका मिल गया।

आघात से व्यथित सेठ शांतिदास दिल्ली गये और उदारमना ऐसे दारा से मिले। दारा ने शाहजहाँ से बात की। शाहजहाँ ने सेठ की बात को सुना और आश्वस्त किया और औरंगजेब को दक्षिण के सूबे के रूप में हटा दिया गया।

सेठ को मंदिर वापस मिल गया। समस्त संघ इकट्ठा हुआ। मस्जिद से पुनः मंदिर बनाना चाहिए या नही -एतद् सम्बंधित विचार विमर्श हुआ। सब का अभिप्राय नकारात्मक होने के कारण वह

मंदिर खण्डहर के रूप में पडा रहा।

आज भी वह इमारत आणंदजी कल्याणजी के नियंत्रण में है।

शांतिदास सेठ ने बादशाह से मंदिर रक्षा के फरमान पाने में अपना शेष जीवन व्यतीत किया और सत्तर वर्ष की आयु में वर्ष १६५९ में सेठ का अवसान हुआ। हमारे पूर्वजों की नीति-कुर्सी को सलाम !

97. हमारे पूर्वजों की नीति – कुर्सी को सलाम

शांतिदास सेठ के पुत्र का नाम लक्ष्मीचंद था। वर्ष १६५७ में जब शाहजहाँ बहुत बीमार हुए तब उनके सबसे बडे पुत्र दारा दिल्ली की गद्दी पर बैठ गया। अब्दुल्ला को बंगाल में, औरंगजेब को दक्षिण में,और मुराद को गुजरात में सूबा नियुक्त किया गया। ये तीनों भाई दारा के खिलाफ एक हुए। औरंगजेब ने मुरादसे कहा "तुम बादशाह होना। मुझे उसका कोई मोह नही है। हम तीनों मिलकर दारा को अपदस्थ कर देंगे।"

मुराद को धन की बहुत जरूरत थी। उसने सेठ लक्ष्मीचंद से धन मांगा। सेठ ने शत्रुंजय तीर्थ के अधिकार की नई सनद प्राप्त करके मुराद को धन दिया। मुराद ने अनेक छल-कपट करके दिल्ली का तख्त कब्जे में कर लिया। स्वयं को बादशाह गाझी के रूप में घोषित कर दिया। तत्पश्चात् मन से मैले औरंगजेब ने मुराद को शराब के नशे में चूर करके प्रजा के समक्ष राजा के रूप में अयोग्य प्रमाणित किया। उसके बाद मुराद और शाहजहाँ को बंदी बनाकर औरंगजेब १९५८ के वर्ष में दिल्ली का बादशाह हुआ।

मुराद के कैद होने से लक्ष्मीचंद सेठ की साढे पांच लाख की मदद व्यर्थ हुई पर सेठ लक्ष्मीचंद को इस बात का कोई अफसोस नही हुआ क्योंकि शत्रुंजय तीर्थ की सनद उन्होंने प्राप्त कर ली थी पर वृद्ध पिता शांतिदास सेठ ने लक्ष्मीचंद सेठ से कहा :"पैसे गये तो भले ही गये परंतु बादशाह बना औरंगजेब हमारे तीर्थों पर झपट्टा मारेगा,क्योंकि हमने उसके प्रतिपक्षी मुराद की मदद की थी।

औरंगजेब के मन में रहा दंश मिटाने केलिए अत्यंत कुनहबाज सेठ शांतिदास अपनी अतिशय वृद्धावस्था में भी दिल्ली पहुँचे ,लाखों का जवाहिरात नजराने के रूप में औरंगजेब के चरणों में धर दिया और औरंगजेब खुशखुशाल हो गया। उसने कहा :"जौहरीमामा ! क्यों आना हुआ ? कहिए क्या काम है ?"

शांतिदास सेठ ने कहा :"आप नये बादशाह हुए हैं। इसलिए कुरनीश बजा लाने केलिए आया हूँ। साथ ही साथ एक बात भी करनी है कि हम व्यापारियों का काम यही है कि मांगे उसको पैसे देने हैं,आपके भाई मुराद ने धन मांगा था, इसलिये दिया सो आप अन्यथा नहीं लें।"

हँसते हुए औरंगजेब ने कहा :"आप उस बात से निश्चिंत रहिए। मेरे भाई मुराद के द्वारा लिये गये रूपये साढेपांचलाख आपको वापस लौटा रहा हूँ। कहिए और क्या काम है ?"

सेठ ने कहा :"दूसरा काम तो यह है कि शत्रुंजय आदि तीर्थों की सनद आप नये सिरे से लिख दीजिए तो आपकी बडी मेहरबानी होगी।"

अपने स्वार्थ की कोई बात नही कर रहे शांतिदास सेठ की धार्मिक भावना देखकर प्रसन्न हुए औरंगजेब ने सेठ को पालीताणा गाँव,गिरनार और आबु के पहाड बक्षिस कर दिये। प्रतिवर्ष नयी सनद लिख देने केलिए आदेश किया और इस विषय में जो भी दखलंदाजी करेगा ,वह अल्लाह का गुनहगार होगा ऐसा सनद के अंत में लिखा।

अपनी कुनह से औरंगजेब जैसे धर्मांध और मूर्ति तथा मंदिर भंजक बादशाह के पास से सेठ शांतिदास ने तीर्थरक्षा का कार्य हासिल कर लिया। तत्पश्चात् शांतिदास सेठ का देहावसान हो गया।

उनके पुत्र लक्ष्मीचंद सेठ ने हमेशा पिता के पदचिह्न पर औरंगजेब केसाथ मधुर सम्बंध बनाये रखा। औरंगजेब का पुत्र बहादूरशाह के नाम से बादशाह हुआ। लक्ष्मीचंद सेठ ने बहादूरशाह की धन आदि से मदद करके पुनः तीर्थरक्षा की सनद प्राप्त कर ली।

बहादूरशाह के अवसान के बाद उसका पुत्र जहाँदरशाह बादशाह हुआ। लक्ष्मीचंद सेठ ने उसे भी अपने हाथ पर रखकर अपना तीर्थरक्षा का कार्य करवा लिया।

तत्पश्चात् सैयदबंधुओं ने बादशाह के खिलाफ विद्रोह किया। बदलती हुई हवा के रूख को देख

लक्ष्मीचंद सेठ ने सैयदबंधुओं की सहायता की और तीर्थरक्षा का कार्य सिद्ध कर दिया। तत्पश्चात् सेठ लक्ष्मीचंद का अवसान हुआ।

क्या पूर्वज ऐसा कहते हैं कि धर्म की रक्षा केलिए कुरसी को सलाम करते रहना?

98. खुमारीवाले खुशालचंद सेठ

शांतिदास सेठ के पुत्र लक्ष्मीचंद और लक्ष्मीचंद सेठ के पुत्र का नाम खुशालचंद। वे अपने पिता और दादा की तरह धर्मात्मा थे। उनके पास सदैव पांचसौ आरबों का सैन्य रहता था।

एक दिन परमात्मा महावीरदेव के जन्म कल्याणक के दिन एक घटना घटित हुई। अहमदाबाद में अखत्यारखाँ नामक सूबेदार था। उसे जैन धर्म केप्रति ईर्ष्या होने के कारण पैगाम भेजकर खुशालचंद सेठ से कहलवाया कि "कल्याणक का वरघोडा (भव्य शोभायात्रा/नगरयात्रा) निकालना हो तो उसके लिए अनुमति लेनी पडेगी।"

खुशालचंद सेठ ने सैनिक से कहा :"सूबेदार से कहना कि इससे पूर्व कभी अनुमति ली नही गई है। अतः इसबार भी अनुमति नही ली जायेगी। मुझे नयी परम्परा डालनी नही है और वरघोडा तो निकालकर ही रहूँगा।"

यह सुनकर सूबेदार को गुस्सा आया। सेठ को कैद करने केलिए पचास घुडसवार रवाना हुए। सेठ की गली के पास ही खुशालचंद सेठ के पांचसौ आरबों ने उन पचास घुडसवारों को ललकारा और भगा दिया।

सूबे ने बडा सैन्य भेजा और दोनों के बीच मुकाबले की पूर्वतैयारियाँ शुरु हो गईं।

गाँव का महाजन तो चिंतित हो गया। महाजन इकट्ठा हुआ। सब मिलकर अखत्यारखाँ केपास गये और उन्हें बताया कि "साहब ! यदि युद्ध छीड गया तो तोपों की गोलंदाजी से समस्त अहमदाबाद खत्म हो जायेगा।" सूबेदार ने कहा :"यदि खुशालचंद तीन दिन में मेरी शरण में आ जायेगा या नगर

छोडकर चला जायेगा तो मैं अपने सैन्य को वापस बुला लूंगा।"

निराश महाजन सेठ के पास गया। नगर को बचा लेने केलिए और विशेष रूप से गगनचूम्बी मंदिरों को बचा लेने केलिए सेठ को समझाने की कोशिश की। आखिरकार सेठ ने दूरदर्शितापूर्वक तीन दिन में नगर त्याग की शर्त स्वीकार की। अतः सूबेदार ने अपना सैन्य वापस बुला लिया। खुशालचंद सेठ ने अहमदाबाद छोडते समय महाजन से कहा कि "इक्कीस दिन में मैं यदि धूम धडक्के केसाथ अपनी हवेली में नही लौटा तो मेरा नाम खुशालचंद सेठ नही"

सेठ पेथापुर के निकटस्थ वासणा नामक गाँव में जाकर रूके। वहाँ से उन्होंने दिल्ली के बादशाह से पत्रव्यवहार किया।

तत्कालीन सैयदबंधुओं को सारी हकीकत से वाकिफ किया। उन्होंने सूबेदार अखत्यारखाँ को दिल्ली बुलाकर बहुत डाँट-फटकार दी। "और इस तरफ खुशालचंद सेठ ने भारी ठाटमाठ केसाथ अहमदाबाद शहर में नगर प्रवेश किया।

यह वही खुशालचंद सेठ थे जिन्होंने समग्र अहमदाबाद को लूटने की योजना कर चुके मराठों को विपुल धनराशि देकर लूटने से रोका था। प्रजा को बचाने के खुशालचंद सेठ के ऐसे प्रयत्नों पर आफ्रीन होकर अहमदाबाद के हिंदू-मुस्लिम व्यापारियों ने अपने माल पर सैकडे चार आना सेठ को वंशपरंपरागत देने का निर्णय पारित किया था।

जब मराठाओं की सत्ता आयी तब खुशालचंद सेठ ने उन्हें विपुल धनराशि देकर उनके साथ भी अच्छा सम्बंध रखा था।

खुशालचंद सेठ के मन में एक ही बात थी कि तीर्थों की रक्षा होनी ही चाहिए। उसके लिए भले ही लाखों का जवाहिरात नजराने के रूप में ही क्यों न रखना पडे?

99. हमेशा अन्य का भी विचार किया जाये।

रोम नामक देश के राजा ने भारत के किसी राजा को खास प्रकार का सुरमा बनाकर भेजा कि उसका अंजन करते ही अंधा भी देखने लगे। बहुत परिश्रम के बाद यह सुरमा तैयार हुआ होने के कारण मात्र दो आँखें ही देखने लगे, उतनी मात्रा में वह सुरमा भेजा गया था। राजा ने विचार किया कि किसकी दोनों आँखों को दृष्टि प्रदान की जाये ! आखिरकार यह निश्चित किया गया कि जीवन पर्यंत राज्य की उत्कृष्ट सेवा करनेवाले अंधत्व को प्राप्त वृद्ध मंत्री को इस सुरमे से लाभित किया जाये।

राजा ने मंत्री को बुलाया। सारी बात बता दी गई। राजा के समक्ष ही सुरमा आँजा गया। मंत्री को दृष्टि वापस मिल गई।

पर यह क्या ? अब मंत्री को दूसरी आँख में बाकी बचा हुआ सुरमा आँजना था पर उन्होंने ऐसा न करके सुरमे को जीभ पर रख दिया। मुँह बंद करके आँखें मीच ली।

राजा तो यह दृश्य देखकर दंग रह गया। दूसरी आँख में सुरमा आँजने के बदले जीभ पर रख देने की मूर्खता मंत्री ने क्यों की ?

जब मंत्री ने आँख खोली तब राजा ने अपनी व्यग्रता व्यक्त की।

मंत्री ने कहा ,"राजन! मैंने जो किया है,उसे आप शान्ति से सुनें। मुझे तो एक आँख मिल गई है। मैं एक आँख से राजकाज कर सकूँगा।"

"मैंने जीभ पर सुरमा रखकर अपनी तीक्ष्ण रसनेन्द्रिय की शक्ति से इस सुरमे में किन किन तत्वों का मिश्रण किया गया है, उसे खोज निकाला है। मैं अब बोरियाँ भर भरकर ऐसा ही सुरमा तैयार करके आपको दे सकूँगा। इससे हम हजारों अंधलोगों को दृष्टिदान दे सकेंगे। इस लाभ के सामने मैंने एक ही दृष्टि प्राप्त की है तो इसमें कुछ भी अघटित नही हुआ है।"

मंत्री ने जैसा कहा वैसा ही हुआ। हजारों अंध देखने लगे। रोम देश के राजा को भी एक बोरी भरकर सुरमा भेजा गया। इस प्रकार भारत के राजा उनके ऋण से ऊऋण हुए।

100. संगठन में ही जीत

जहाँ संगठन नही वहाँ जीत सम्भव नही है।

जहाँ संगठन है वहाँ पराजय का कोई सवाल ही नही ऊठता।

बादशाह अहमदशाह।

मराठाओं से जंग करने के लिए बडी तैयारी शुरु की।

इस तरफ सारे मराठा सरदार एकत्र हुए।

बादशाह के दांत खट्टे करने का सब ने मिलकर संकल्प किया। सारे सरदारों का सैन्य एक हुआ।

दोनों पक्ष की छावनियों ने डेरा डाला। कुछ ही दिनों में युद्ध शुरु होनेवाला था। दोनों पक्ष युद्ध की पूर्वतैयारी में जुटे हुए थे।

एक दिन बादशाह ने देखा कि मराठाओं की छावनी से अलग अलग स्थानों से धुआँ निकल रहा था। बादशाह ने अपने सेवक से पूछा : "इतना सारा धुआँ छावनी कें अलग अलग भागों से क्यों निकल रहा है ?"

तलाश करके उस सेवक ने बताया कि " बादशाह सलामत ! मराठाओं में अनेक जातियाँ हैं। एक जाति का मराठा अन्य जाति का खाना नही खाता। अतः सभी जातियों का खाना अलग पकता है। छावनी तो एक है पर रसोई (बावर्चीखाने) अलग। इसलिए अलग अलग स्थानों से धुआँ निकलता है।"

बादशाह ने कहा,"क्या ऐसी बात है ?"तब तो मजा आ गया। पराजित होने का मेरा भय आज खत्म हो गया। आज ही हमें खुदा का नाम लेकर उन विभाजित मराठों पर धावा बोल देना चाहिये। अब विजय को लेकर मेरे मन में कोई शंका नही है।"

उसी दिन घमासान युद्ध खेला गया और सचमुच मराठा पराजित हो गये।

जहाँ संगठन वहाँ जय ! जहाँ विघटन वहाँ पराजय !

101. शक्ति, बुद्धि और सामग्री का सदुपयोग कीजिए

एक अमीर पिता के दो बेटे थे। दोनों की उम्रह बीस को पार कर गई तब पिता ने उन दोनों को पास बुलाया। दोनों को पांच -पांच लाख रुपये देकर कहा कि,"यह राशि लो और हर गाँव में दुकान खोलो और कारोबार बढाओ।"

बडे बेटे ने कुछ ही समय में दस से पंद्रह गाँवों में अपनी दुकानें शुरू की। जब धनराशि खत्म हो गई तो वह उदास हो गया क्योंकि अब कुछ हो नही सकता था।

छोटे बेटे ने सभी गाँवों में जाकर कारोबार शुरू कर दिया। उस इलाके में डेढसौ गाँव थे। सभी गाँवों में वह कारोबार चलाने लगा।

इससे उसके पास पांच वर्ष में तो बेशुमार संपत्ति आ गई।

जब पिता ने दोनों पुत्रों से पांच लाख रुपयों का हिसाब मांगा तो बडे बेटे ने पंद्रह दुकानों से हुई सामान्य कमाई के बारे में बताया।

छोटे बेटे ने कहा : "पिताजी ! आपके पांच लाख रुपये मैं आज ही सूद सहित वापस लौटा रहा हूँ। उपरांत मैंने अस्सी लाख रुपयों की कमाई की है।"

यह सुनकर चकित हुए पिता ने उस पुत्र से ज्यादा जानकारी चाही तब उसने कहा कि ,"पिताजी ! मैंने हमारे इलाके के सभी व्यापारियों से पहले तो दोस्ती कर ली।

बाद में मैं उस दोस्ती को ऐसे विकसीत करता चला कि सारे व्यापारी मेरे जिगरी दोस्त हो गये। मैंने तो बडे भैया की तरह एक भी दुकान नही लगाई फिरभी इन सारे जिगरी दोस्तों की सारी दुकानें मेरी हो गई हैं।

उनके साथ साझेदारी में मेरे बडे-बडे कारोबार चलते हैं। इस लिए इतना कमाया हूँ।"

पिता ने अपना सारा कारोबार छोटे बेटे को सौंप दिया। वह उसकी बुद्धि पर आफरीन हो गया था।

102. जहाँ देह का होश नहीं वहाँ ही

सच्चा ध्यानः सच्ची समाधि

रामकृष्ण को कैसे भी निर्विकल्प समाधि लगती नही थी। उनके गुरु तोतापुरी के लिये तो यह बात बाँये हाथ का खेल था। अतः रामकृष्ण बेचैन रहते थे।

एकबार उन्होंने गुरु से अपने मन की बात कही। गुरु ने उसके पास एक छुरी मंगवायी और धडाम से ललाट (आज्ञा चक्र) पर एक घाव (चीरा) लगा दिया।

बस...तत्पश्चात रामकृष्ण अपनी इष्टदेवी "मा" का नाम लेते ही समाधि में उतर जाते थे। उसके वर्णनातीत आनंद का अनुभव करते हुए रामकृष्ण एकबार तो दिन,महीने-पूरे छः महिने तक समाधि अवस्था में जमीन पर सीधे लेटे रहे।

उनकी इस स्थिति को कुछ दिन पूर्व वहाँ अचानक जा पहुँचे किसी अनजान संन्यासी ने देखा। महा तेजोमय ललाट को देखकर उसे लगा कि यह तो भारत की कोई दिव्य विभूति होनेवाला व्यक्ति लगता है। यदि वह बिना कुछ खाये-पिये समाधि में रहेगा तो शायद मर जायेगा। मुझे उसकी रक्षा करनी चाहिए।

बाद में वह संन्यासी तो वहाँ रह गया। कुछ दिन के बाद उसने रामकृष्ण के गाल पर दो चार डंडे जमाकर बडी मुश्किल से कुछ क्षणों के लिए उन्हें समाधि से बाहर लाकर मुँह खोलकर कुछ चम्मच दूध डाल दिया।

कभी रामकृष्ण समाधि से बाहर नही आये तो दूध मुँह में ही पडा रहता था। हलक से नीचे नही उतरता था। ऐसे वक्त गाल पर दो डंडे जमाकर भी वह संन्यासी रामकृष्ण को समाधि से बाहर लाता था। जो आत्मा देह का भी होश-ओ-हवास गँवा दे ,वह सच्ची समाधि को प्राप्त हुआ हो ऐसा कहा जा सकता है।

ध्यान भी उसका सच्चा जिसे ध्यान से बाहर निकलने के बाद अपना शरीर है या नही ,उस बात का पतियार करना पडे !

103. विक्रमसिंह का बलिदान

उसका नाम विक्रमसिंह भावसार था ।

भावसार होने पर भी जैन धर्म के प्रति उसमें परंपरा से राग था, बारोट लोगों की तरह ।

एक बार वह भोजन कर रहा था । दाल में नमक की कमी अनुभव करते हुए खाना परोस रही भाभी से कहा :" भाभी दाल में नमक नही है ।"

भाभी ने कहा :" देवरजी ! आपमें भी नमक कहाँ है ? यदि नमक होता तो शत्रुंजय तीर्थ के सिंहद्वार पर काफी समय हुआ एक खूंखार बाघिन बैठी हुई है । यात्रियों की यात्रा रुकी पडी है । उसके लिये आप अचूक कुछ कर सके होते ।"

अतिवेग से छूटे तीर जैसे ये शब्द विक्रम को आहत कर गये । खाना छोडकर भाभी से आशीर्वाद लेकर बाघिन को अंकुश में करने के लिए सज्ज होकर निकल पडा। जैनसंघ को एकत्र किया । प्राणाहूति देकर भी बाघिन का संकट मिटाने के लिए अपना संकल्प घोषित किया । श्रीसंघ के आशीर्वाद लेकर वह तीर्थ पर पहुँच गया । सैंकडो जैन भी उसके साथ गये ।

उसने दूर से बाघिन को देखा । वहाँ बगल में किसी ताक पर घंटे को लटकते हुए देखा । उसने जैनों को वहाँ रुकने के लिए कहा ।

दोनों हाथ पर मोटे वस्त्र की पट्टियाँ बांध दी । उसने श्रीसंघ से कहा कि "मैं बाघिन से लडूंगा । यदि विजयी हुआ तो घंटा बजाऊँगा तब आप सब मेरे पास आ जाना ।"

विक्रमसिंह भगवान आदिनाथ जी का नामस्मरण करते हुए अकेला आगे बढा । बाघिन भूखी थी । वह बीफर गई । दोनों के बीच तुमूल जंग हुई । दोनों बुरी तरह से घायल हुए । आखिरकार बाघिन के मुख में अपना बायाँ हाथ डालकर उसका जबडा विक्रमसिंह ने फाड दिया । बाघिन की मौत हो गई । बडी मुश्किल से घंटे तक पहुँचकर विक्रम ने घंटा बजाया लेकिन श्रीसंघ के वहाँ दौडकर आते आते तो उसके प्राणपखेरू उड गये । विक्रमसिंह की अमर गाथा का गायन करनेवाला प्रतीक आज भी है । वह पोल अब "वाघण पोल" के नाम से जानी जाती है ।

104. धर्मपत्नी! शराबी पति!

मुम्बई के फोर्ट क्षेत्र में घटी यह सत्य घटना है। उस परिवार में जो पति था वह कुसंग के कारण शराबी हो गया था। उसकी पत्नी धर्मानुरागिणी थी। शराब की आदत में पति ने अपना जीवन बरबाद कर दिया था।

चतुर्दशी के पवित्र दिन उस स्त्री ने अनशन रखा था। शाम के समय प्रतिक्रमण करके वह उपाश्रय से लौटी और शराब के नशे में चकचूर पति ने बकवास शुरु किया। बात आगे बढी। उसने पत्नी से कहा कि आज उसे शराब पीनी पडेगी। यदि वह नही पियेगी तो जबरन पिलायेगा। वह औरत तो वैसे भी बहुत त्रस्त थी।

उसका जीवन विषैला हो गया था। उसे लग रहा था कि उसकी संतानों पर बाप के ऐसे व्यसनों का बुरा असर होगा ही। आज तंग आकर उसने कहा ,"शराब तो कदापि नही पिऊँगी पर अब मैं इस जीवन से थक गई हूँ।

अब तो आप मुझे जला डालें तो अच्छा।"

नशे के प्रभाव में शठतापूर्वक हंसते हुए पति ने कहा :"चल...तुम जल जाना चाहती हो ना ? तो अभी जला देता हूँ।"

और वह पुरुष केरोसीन ले आया और उस स्त्री पर छीडका। दियासलाई की तीली जलाकर आग लगा दी।

अत्याचारों से त्रस्त उस औरत ने जरा भी प्रतिकार किया नही। पांच-दस सेकंड में तो आग ने भयंकर रूप ले लिया।

शराब के नशे में पागल हुआ पति उस भयानक दृश्य को देखकर हंसता रहा। कुछ ही पलों में वह औरत जलकर खाक हो गई ?कोई आग घर में तो कोई आग मन में !"

हाय ! न जाने कितने एरकंडिशन्ड घरों में भयानक आग लगी होगी।

105. ''मैं कुत्तें की मौत मरूँगा पर....'' स्वीकार्य हैं।

गांधीजी"गोरों के विरुद्ध कमर कसके लड रहे थे। जब-तब ,जहाँ-तहाँ उन्हें पैसा ओर कार्यकरों की जरूरत अधिक रहती थी। गोरों ने नमक पर कर लागू किया तब उन्होंने उसके खिलाफ सख्त विरोध ऊठाया। एतद्अर्थ दांडीकूच की यादगार योजना भी तैयार की।

उस समय वे अहमदाबाद में थे। वहाँ के बडे-बडे धनिकों को एकत्र किया। उनके समक्ष यह योजना रखी।

धन की ज़रूरत के बारे में भी बताया।

पगडीबंद अमीरों ने समवेत स्वरों में कहा :""बापू ! चिन्ता न करें ,हम हमेशा आपके साथ हैं।"

इन शब्दों से बापू का हौसला बढ गया।

पर बाद में गोरों ने उन अमीरों को फँसाने की धमकी दी तो सब पस्तहिम्मत हो गये।

इस तरफ उनके बलबूते पर गांधीजी ने दांडीकूच की सारी तैयारी करके उनसे कहा कि आप इस दांडीकूच में शामिल हो जाइए तथा आर्थिक सहयोग कीजिए।

पर उन्होंने अपेक्षित उत्साह नही दिखाया। उन्होंने बापू से मिलकर बात करने का ओचित्य भी नही दिखाया।

धन राशि भी नही भेजी। ऐसे में इस कूच में जुडने का तो सवाल ही नही ऊठता।

गांधीजी ने महसूस किया कि यह तो बीच समुद्र में आकर नाव को डूबानेवाली बात हुई। वे बहुत व्याकुल हो गये।

उन्होंने कुछ साधारण लोगों को अपने साथ लेकर दांडीकूच का प्रारम्भ कर दिया। पर अहमदाबाद छोडने से पूर्व उन्होंने अपने आखिरी भाषण में कहा कि "मैं कुत्ते की मौत मरूँगा पर अब स्वराज लिये बिना अहमदाबाद नही लौटूँगा।"

106. जहाँ चमत्कार वहाँ नमस्कार

कोई एक मुनिराज भिक्षा बहोरकर उपाश्रय की ओर जा रहे थे ।

महंमद छैल नामक एक सुप्रसिद्ध जादुगर ने उन्हें दूर से आते देखकर अपने मित्रों को आनंद कराने का विचार किया ।

उन्होंने मित्रों से कहा :"सामने भिक्षा की झोली लिये आ रहे जैन मुनि के भिक्षा पात्र मांस से भरे हुए हैं । देखना ,अभी मैं दिखा रहा हूँ ।"

जैसे ही जैन साधु महंमद के पास से गुजरने लगे कि महंमद ने उनसे कहा कि "महाराज ! आप अहिंसा के उपासक होते हुए भी मांसाहार करते हैं ना ?आपके भिक्षापात्र में मांस किस लिए है ?"

ये शब्द सुनकर साधु तो दंग रह गये । उन्होंने छेल की इस ललकार के जवाब में तुरंत एक के बाद एक पात्र निकाला । अरे ! सचमुच उसमें मांस नजर आता था !

महंमद ने उसके मित्रों को मांस दिखाया । महाराज का भी क्रूर मजाक उडाया ।

अत्यंत व्यग्रता अनुभव कर रहे साधु उपाश्रय पहुँचे । महंमद ने तंत्रविद्या से अमांस में मांस दर्शन कराया है और जैन धर्म की घोर निंदा करवायी है । यह बात उनके दीमाग में बैठ गई ।

वे तुरंत जाप में बैठ गये । इस तरफ महंमद अपने मित्रों के साथ बतियाते हुए धरती में अंदर उतरता गया । गले तक नीचे उतर गया ।

महंमद की समझ में यह बात बैठ गई कि जैन साधु ने ही यह सजा दी है । उसने मित्रों को जैन साधु के पास भेजा । मुनि महंमद छेल के पास गये । महंमद ने अश्रुपूरित क्षमायाचना की और जान बक्षने के लिए प्रार्थना की ।

"किसी भी साधु,संन्यासी,जोगी,ब्राह्मण को मैं कभी नही सताऊँगा -ऐसी प्रतिज्ञा कर ।" बडी सख्त आवाज में मुनि ने कहा ।

महंमद ने तुरंत प्रतिज्ञा की ।

उपाश्रय जाकर मुनि पुनः जाप में बैठ गये और धीरे धीरे महंमद धरती से बाहर निकलता गया ।

107. अन्याय के विरूद्ध अकेले भी टक्कर लो

एकदा दक्षिणी अमरिका में सरमुखत्यार का शासन चल रहा था। प्रजा की यातनाओ का कोई उपाय नही था।

सरमुखत्यार शासक के दमन से त्रस्त विक्टर नामक अडतीस वर्षीय गीटारवादक शर पर कफन बांधकर बाहर निकला।

वह यत्र-तत्र गीटार बजाकर तथा राष्ट्रभक्ति के गीत गाकर प्रजा को प्रहर्षित करने का काम करता था। उसके गीत सुनने के लिए देखते ही देखते पांच-दसहजार लोग जमा हो जाते थे।

दिन प्रतिदिन प्रजा में उदित होती स्वतंत्रता की भूख की आग को देख सरमुखत्यार सतर्क हुआ।

एक दिन हजारों लोगों से घिरा विक्टर गीटार बजा रहा था और सरमुखत्यार शासन के खिलाफ आखिरी युद्ध लड लेने की तेजाबी प्रेरणा गीतों द्वारा कर रहा था तब सरमुखत्यार अफसर हवा में तलवार ऊठाये घोडे पर सवार होकर वहाँ जा पहुँचा।

आते ही उसने गीटार बजाते हुए गाने में मशगुल विकक्टर के दोनों हाथ कुहनी के आगे से काट लिये। उसने कहा,"नालायक ! नीच ! ले अब बजा तुम्हारी गीटार और गा ये तुम्हारे गर्म जोशिले गीत।"

हजारों लोग उस समय मूक प्रेक्षक बनकर मानो यह तमाशा देख रहे थे। विक्टर के लिए मर मिटने के लिये कोई भी आगे नही आया था। प्रजा की इस कायरता को देखकर विक्टर और ज्यादा बेचैनी अनुभव करने लगा।

प्रतिशोध के भाव से प्रेरित होकर वह अपने कटे हाथ का सहारा लिये उसने गीटार को पकडकर बजाते हुए एक गीत गाया,जिसमें उसने ईसु से कहा :" क्या मनुष्य मनुष्य का कत्ल कर दे ऐसी दुनिया की रचना करने में ही तुमने अपने सात दिन पूरे कर दिये थे !

ना....मैं इस बात को मान ही नही सकता।"

और उसी वक्त अफसर की बंदुक से गोली छूटी और विक्टर का मस्तक बेधकर निकल गई।

108. भलाई की भव्यता

जापान में घटी यह एक सत्य घटना है । एक पर्वत पर छोटा सा गाँव बसा हुआ था । पर्वत की गोद में जो जमीन थी वह खेती योग्य होने के कारण उस गाँव के लोग तराई में खेती करते थे । पर्वत के चारों ओर समुद्र था ।

खेती के समय में सारा गाँव खाली हो जाता था । स्त्रियाँ और बच्चे भी मजदूरी करने के लिए खेतों में चले जाते थे ।

एक दिन की बात है । गाँव के एक जईफ किसान बुखार चढने के कारण गाँव में ही रुके हुए थे ।

विगत पचास बरसों में घटी न हो ऐसी घटना घट गई । पर्वत की चारों ओर फैला समुद्र अत्यंत कूपित हुआ । खूब दूर तक नजर करने से समुद्र में आ रहा तूफान जईफ किसान से अनदेखा नही रहा।

मात्र दस ही मिनट में तो समुद्री जल तराई के सारे खेतों को निगल जानेवाला था। बूढा किसान यदि चीखे-चिल्लाये तो भी किसी को सुनाई देनेवाला नही था ।

बूढा किसान चिंता में पड गया कि सारे लोगों को पहाड पर आ जाने की खबर कैसे पहुँचायें ?

एकाएक उनके मन में विचार आया कि अपना झोंपडा तो पर्वत की धार पर ही था। उन्होंने तुरंत दियासलाई से आग लगा दी । एक ही मिनट में आग की ज्वालाएँ आकाश में फैल गईं ।

तराई के खेतों में काम कर रहे लोगों ने आग की इन ज्वालाओं को देखा । सब चीखने लगे कि दौडो ! दौडो ! बुजुर्ग के झोंपडे में आग लगी है ।"

चौथे ही मिनट में सभी छोटे-बडे पर्वत पर चढने लगे । पर्वत पर पहुँचते ही समुद्र की तूफानी लहरों ने तलहटी के सारे खेतों को अपने में समा लिया !

बुजुर्ग के हृदय में सारे लोगों के बच जाने की खुशी समा नही रही थी । सत्य घटना का पता चलते ही लोग कृतज्ञता के भाव से उस जईफ के चरण चूमते थे ।

सबने मिलकर जईफ के लिये नया घर बना लिया ।

109. धर्म के प्रति अत्यंत निष्क्रिय लोग

अंतरीक्षजी तीर्थ महाराष्ट्र के अकोला जिले में पडता है ।

इस्वीसन १९०८ से दिगंबर और श्वेतांबरों के बीच उस तीर्थ को लेकर तकरार शुरु हुई है । कोर्ट का मामला लन्दन की प्रीवी काउन्सिल तक पहुँचा है । इस्वीसन १९२९ में श्वेताम्बर भारी विजय प्राप्त कर लन्दन से वापस लौटे । कुछ समय ठीकठाक चलने के बाद इस्वीसन १९६० के वर्ष से संघर्ष पुनः शुरु हुआ है । उस समय के दरमियान पुनः एक बार श्वेतांबरों ने भारतभर के प्रतिष्ठित अमीर और पढे लिखों की अंतरीक्षजी में बैठक का आयोजन किया । यह बैठक अति महत्वपूर्ण होने के कारण तीर्थ कमिटी के सदस्यों ने बहुत जहमत ऊठाई थी ।

अति महत्वपूर्ण ("बहुत बडे ") ऐसे एकसौ लोग तो इस बैठक में अवश्य अपनी उपस्थिति देंगे ऐसा सब का अनुमान था । बैठक के अगले दिन सबको यहाँ पहुँचना था। आकोला स्टेशन पर उन महानुभावों का फूलमाला से स्वागत करने का आकोला के श्रीसंघ ने निर्णय किया था ।

संघ के सैंकडो भाई-बहन स्टेशन पर उपस्थित हो गये । एकसौ मालाएँ तथा एकसौ पुष्पगुच्छ तैयार रखे गये थे । आतुर नयनों से गाडी के आने की दिशा में सब अपनी नजर जमाये खडे थे कि गाडी आ गई ,जयनाद किया गया । मालाएँ तथा पुष्पगुच्छ तैयार रखे गये । फर्स्टक्लास डिब्बों के दरवाजे खुले ।

पर यह क्या ?

एक ही वृद्ध महानुभाव उस बैठक में उपस्थिति देने के लिए डिब्बे से उतरे । उनके अतिरिक्त कोई नही । निन्यानवे मालाएँ तथा पुष्पगुच्छों की हालत कफौडी हो गई । सब के मुख पर उदासी छा गई।

हाथ में छडी लिये उतरे हुए वह तीर्थभक्त पुरुष थे -जीवतलाल प्रतापसी ।

शासन के कार्यकरो ! सावधान...जो भी करो आप अपने बलबूते पर ही करना । मौके पर आपको अकेले ही काम करना पडेगा । यह बात दिल की दीवार पर लिखकर ही काम का प्रारम्भ करना ।

110. गौतम बुद्ध के काम्पिल्यपुर का नाश

यह समय दो गणराज्यों का समय था। दुर्भाग्यवश एकबार उन गणराज्यों के राजाओं के बीच परस्पर वैमनस्यभाव जन्मा। वे राजा एक-दूसरे को क्षति पहुँचाने का एक भी मौका हाथ से छोडते नही थे।

उनमें एक राजा का नाम विड्डभ था। उसने गौतम बुद्ध की भूमि काम्पिल्यपुर पर आक्रमण करने का निर्णय किया क्योंकि वह शाक्य मैत्रीभाव की बातों के अतिरेक का शिकार हो गये थे।

इस नगर में बुद्ध ने मैत्री का सबक बहुत अच्छे से सिखाया था। वहाँ की प्रजा भी मित्रता की खूब बातें करती थी। मैत्रीभाव के गीत गाती थी। झूमती थी। मैत्रीभाव से दुश्मन भी दोस्त बन जाता है -ऐसी उस प्रजा की मान्यता थी। विड्डभ यह सब अपने लाभ स्वरूप समझता था।

जब राजा विदुभ ने काम्पिल्यपुर पर आक्रमण कर दिया तब गौतम को खबर होते ही वे उसका रास्ता रोककर खडे हो गये। अत्यंत भोली-भाली प्रजा का नाश नही करने के लिए उसे बोधित किया। काम्पिल्यपुर के लोगों की बेशुमार सम्पत्ति पर राजा की नजर जमी हुई थी। वह उस समृद्धि को लूट लेना चाहता था लेकिन बुद्ध की उसे मर्यादा रखनी पडी। वह लाचारी के साथ वापस लौट गया।

दूसरी बार उसने हमले का अवसर साध लिया पर तब भी गौतम बुद्ध ने उसे समझा-बूझाकर वापस लौटा दिया लेकिन जब गौतम बुद्ध मृत्यु शैया पर लेटे हुए थे तब तीसरी बार तो उसने आक्रमण कर ही दिया।

राजा ने आक्रमण किया तब काम्पिल्यपुर की प्रजा ने उसका प्रतिकार तो नही किया पर दुश्मन को भी मित्र बना दे ऐसे मैत्रीभाव सने गीतों के साथ राजा का स्वागत किया। झूमते-नाचते हुए ऐसे गीत गाते हुए लोग रास्ते पर सर्वत्र मैत्री मैत्री (मेत्ती...मेत्ती...) का स्वर गुलाल बरसाने लगे।

इन सब से बेपरवाह विड्डभ बेशूमार समृद्धि लूटकर काम्पिल्यपुर का सर्वनाश करके बेखटके रवाना हो गया !

क्या यह "अति मैत्री" का परिणाम होगा ?

111. जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि

कहा जाता है कि एक बार श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर और दुर्योधन को अपने पास बुलाया। उन्होंने दोनों से कहा कि "मेरी ईच्छा ऐसी है कि आप दोनों पूरे नगर में कितने सज्जन और कितने दुर्जन हैं,उसकी फेहरिस्त (टीप) तैयार करके मुझे दो।"

दोनों ने उस बात का स्वीकार किया। इसलिए श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर को दुर्जनों की सूचि बनाने तथा दुर्योधन को सज्जनों की सूचि तैयार करने के लिये कहा।

दूसरे दिन सुबह से ही वे दोनों अपने अपने काम पर चले गये।

एक सप्ताह पर्यंत यह काम चला। युधिष्ठिर दिन-रात सारे नगर में एक भी स्थान छोडे बिना इस कार्य के लिए घूमते रहे परंतु युधिष्ठिर को एक भी दुर्जन मिला नही।

क्या हस्तिनापुर में एक भी दुर्जन नही था ?अरे गिनने बैठें तो कईं थे पर युधिष्ठिर की नजर में ऐसे लोगों में भी अनेक गुण दिखाई देते थे। अतः उन्होंने किसीका भी नाम दुर्जन के रूप में अपनी सूचि में डाला नही।

दूसरी ओर दुर्योधन की भी दशा ऐसी ही हुई। सात रात और सात दिन की कडी मेहनत के बाद भी उसे एक भी सज्जन नजर नही आया।

हाँ...हस्तिनापुर में हजारों सज्जन थे परंतु दुष्ट दुर्योधन को उनमें दुर्जनता ही नजर आती थी। अतः उसकी बही में एक भी नाम दर्ज नही हुआ।

दोनों ने आकर श्रीकृष्ण से अपनी अपनी बात कही।

तब श्रीकृष्ण ने उनसे कहा,"जैसे तुम हो, तुम्हें दुनिया भी ऐसी दिखाई दी। युधिष्ठिर सज्जन-शिरोमणि है। अतः उसे कोई बुरा नहीं दिखाई दिया। दुर्योधन दुर्जन शिरोमणि है। अतः उसे कोई सज्जन नही दिखाई दिया। यदि इससे उल्टा काम सौंपा होता तो आप दोनों की बही ऐसे नामों से पूरी भर जाती।

112. मृत्यु का स्मरण अनासक्त बनाता है

पिता व्यास ने अपने आजीवन ब्रह्मचारी पुत्र शुकदेव को जनक विदेही के पास शास्त्राभ्यास के लिये भेजा।

जब शुकदेव ने जनकराजा के दरबार में प्रवेश किया तब जो द्दश्य उसने देखा,उससे उसकी अंतरात्मा व्यथित हो गई।

जनकराज ने अपनी रानी को सिंहासन पर बिठाया था और उसके गले में हाथ डालकर बैठे थे। शुकदेव के मन में विचार आया कि ऐसा विलासी राजा मुझे क्या शास्त्राभ्यास करा सकेगा ? जबकि उसके खुद का कोई ठिकाना नही है....।

वह वापस लौट गये। पिता व्यास को सारी बातों से अवगत किया। पिता की समझ में आ गया कि कुछ गडबड हुई है। अतः उन्होंने शुकदेव को पुनः जनकराज के पास जाने के लिए कहा।

जब दूसरी बार शुकदेव गये तब जनकराज का एक हाथ रानी के गले में था और दूसरा हाथ जोर जोर से ऊठ रही अगनज्वालाओं पर था। उनके मुख पर प्रसन्न मुस्कान थी।

तब जनक ने शुकदेव को सिपाहियों द्वारा यकायक कैद करवा दिया और किसी न किसी बहाने से उनको फांसी की सजा सुना दी।

शुकदेव से कहा गया कि तेल से छलाछल भरा हुआ कटोरा लेकर एक भी बुंद नीचे गिरने दिये बिना यदि वह पूरे नगर की परिक्रमा करे तो ही उसे फांसी की सजा से मुक्ति मिलना सम्भव है।

शुकदेव ने वह कडी शर्त स्वीकार की। जब उसकी परिक्रमा पूर्ण हुई तब जगह जगह गणिकाओं के उद्धत नाचगान.खुशबूदार खाने के व्यंजन आदि सजाये गये लेकिन तनिक भी यहाँ-वहाँ देखे शुकदेव कसौटी से पार उतरकर राजा के समक्ष आकर खडे हो गये।

मुस्कान बीखेरते हुए राजा ने कहा :"" मौत के भय से यदि तुम इतने जागृत रहे तो मुझे तो मेरी अगणित मौत दिखाई देती हैं तो संसार को भोगने पर भी मैं अंदर से कैसे अनासक्त रह सकता हूँ ?

शुकदेव ने चरणों में झूककर जनक विदेही से क्षमा याचना की।

113. सिद्धि के लिए कितना प्रचण्ड पुरूषार्थ

कौमुदी व्याकरण के रचयिता महान पाणिनी बाल्यावस्था में अत्यंत जड होने के कारण उनके बडे भैया ने मूर्ख कहकर कोसा था। जब यह ऊलाहना उन्हें बहुत प्रभावित कर गई तो विद्वत्ता प्राप्ति हेतु साधना करने के लिए पाणिनी हिमालय चले गये।

उसने पद्मासन में पालथी मारकर बारह वर्ष तक शंकर की आराधना की।

पर कोई परिणाम हाथ न लगने से लगातार बारह वर्ष तक वही आराधना खडे रहकर की।

उसमें भी सफलता नही मिलने पर पैर की ऊँगलियों पर खडे रहकर बारह वर्ष तक शंकर के नाम का जाप किया। इस प्रकार कुल मिलाकर छत्तीस वर्ष बीत गये।

एक दिन शंकर का ध्यान पाणिनी की ओर गया।

पाणिनी की इस साधना की अपर दृष्टिपात करने पर शिवजी तो ऐसे दंग रह गये कि उसमें बारह वर्ष बीत गये। जब शंकर को खयाल आया तब शंकर ने पाणिनी को मनोवांछित वरदान दिया।

और ....पाणिनी विश्वविख्यात संस्कृत व्याकरण "कौमुदी"के रचयिता हुए।

ऐसा ही विश्वविख्यात व्याकरण –" सिद्धहेम शब्दानुशासन" की पूज्य हेमचंद्राचार्यजी ने रचना की।

उसके लिये वे गुरुकृपा प्राप्त कर अहमदाबाद से कश्मीर जाने के लिये निकले थे। कश्मीर के मंदिर की सरस्वती जी का चमत्कार अत्यंत प्रभावक माना जाता था।

पर खम्भात पहुँचते ही उन्होंने स्वप्न में दर्शन देकर ईष्टसिद्धि का वरदान दे दिया। उन्होंने उसके लिये कश्मीर तक जाने का श्रम ऊठाने से रोक दिया।

कैसी अजिबो गरीब ये दोनों बातें हैं ! एक तरफ भयंकर पुरुषार्थ ! दूसरी ओर प्रचण्ड पुरुषार्थ ! उत्कृष्ट शुद्धि !

114. कभी कभार कैसी गड़बड़ हो जाती हैं?

किसी प्रेस में एक आमंत्रण पत्रिका छापने के लिये दी गई। उस पत्रिका में लिखनेवाले के रूप में लगभग सारे नामों के बाद "जी" अक्षर आता था। कम्पोज करनेवाले ने देखा तो उसके पास इतने सारे जी अक्षर के टाईप नही थे।

इससे चिन्तित होकर वह अपने मालिक के पास गया। मालिक ने उन पचास नामों में पहले दो नाम पढे।

मोहनलालजी पानाचंदजी।

छगनलालजी उमेदचंदजी।

उसने देखा कि इन नामों से "जी " यदि हटा दिया जाये तो मोहनलाल पानाचंद,छगनलाल उमेदचंद-नाम छपेंगे। ऐसा होने से कुछ भी अनुचित नही होगा -ऐसा लगने पर उसने कम्पोझिटर को आदेश किया कि सभी पचासों नामों के बाद "जी" आता है,उन सब को हटा दिया जाये। अर्थात वह अक्षर कहीं भी कम्पोझ नही किया जाये।

कम्पोझिटर ने वैसा ही किया और पत्रिका छप गई।

जब पत्रिका की प्रतियाँ लेने के लिए आदमी प्रेस में पहुँचा तब उन पचास नामों को पढकर वह तो दंग रह गया।

उसमें तीसरा आदि नाम निम्न लिखित ढंगसे छपे थे :

रामाजी हुक्माजी

मेराजी लवजी

गंधाजी घुडाजी

चुनाजी असलाजी आदि।

पत्रिका में इस स्थान पर से "जी" हट जाने से निम्न लिखित रूप में छपा था :

रामा हुक्मा

मेरा लव

गंधा घुडा

चुना असला आदि।

अंततोगत्वा सारी पत्रिकाएँ रद्द की ई और किसी अन्य बडे प्रेस में "जी" के साथ छपी।

115. युधिष्ठिर कैसे नीडर सत्यवादी!

दुर्योधन को जब ,ऐसी प्रतीति हुई कि भीष्म पाण्डवों के विरुद्ध पूरी निष्ठा के साथ लड ही नही रहे हैं तब वह सीधा युधिष्ठिर के पास गया। उसने युधिष्ठिर से पूछा कि "पितामह खुलकर हमारे पक्ष के लिए क्यों नही लड रहे हैं ?"

दुर्योधन को पक्का विश्वास था कि युधिष्ठिर महासत्यवादी है, इस४लिए प्रत्येक सवाल का सही उत्तर देगा। भले ही ऐसा करने में उनका अहित ही क्यों न हो जाये ?

युधिष्ठिर ने कहा कि "भीष्म पितामह यह बात भलीभाँति समझते हैं कि सत्य कौरवों के पक्ष में नही है। ऐसी स्थिति में वे कैसे कौरवों के हित में युद्ध लडे ?"

यह सुनकर दुर्योधन ने पलट सवाल किया कि "महाराज ! हम क्या करें जिससे कि पितामह दिल खोलकर हमारे हित में लडे ?"

युधिष्ठिर ने कहा कि यदि आप पितामह की बुद्धि भ्रष्ट कर दें तो तुम्हारी ईच्छा सफल हो जाये।

दुर्योधन ने तुरंत पूछा कि "क्या करने से पितामह की बुद्धि भ्रष्ट होगी ?"

"दुष्ट के घर का भोजन कराया जाये तो बुद्धि भ्रष्ट होगी।" युधिष्ठिर ने शान्ति से उत्तर दिया।

दुर्योधन ने पूछा कि "इस संसार में ऐसा कौन दुष्ट व्यक्ति होगा जिसके घर का भोजन कराने से

पितामह की बुद्धि भ्रष्ट हो जायेगी ?"

"तुम्हारे जैसा दुष्ट और कोई नही है।"युधिष्ठिर ने तडाक से जवाब दे दिया।

यह सुनकर प्रणाम करते हुए दुर्योधन छावनी से बाहर निकल गया।

उसने पितामह को अपनी रसोई का भोजन करवाया। सच ही पितामह की बुद्धि भ्रष्ट हो गई। आगे चलकर दूसरे दिन पितामह ने पाण्डव सेना के बडे हिस्से को कचरकर बरबाद कर दिया।

116. जीभ के कचर जाने से क्या दांत तोड़ा जाता हैं?

चोरों ने रमण महर्षि के आश्रम में लूट चलायी पर कुछ हाथ नही लगा। कुछ हो तभी तो हाथ लगे!

इससे चोर क्रोधित हुए और आवेश में आकर पेड नीचे बैठे हुए रमण महर्षि के एक पैर की जांघ पर जोर से लोहे की छड जमा दी।

घाव में से खून बहने लगा। रमण हँस दिये। उन्होंने मारनेवाले चोर से पूछा :"तुम्हें ऐसा करने में क्या तुम्हें खूब मजा आया ?तो लो यह दूसरा पैर और मारो और ज्यादा मजा आयेगा।"

ऐसे शब्द सुनकर शर्मिंदगी अनुभव कर रहे चोर वहाँ से रवाना हो गये। कुछ समय बाद कुछ भक्त आश्रम में आये। महर्षि की दशा देखकर वे भौंचक रह गये। हकीकत जानकर रमण महर्षि से कहा कि "हम अभी पुलिस को खबर दे देते हैं। जिससे कि चोर तुरंत पकडे जायँ ओर उन्हें कडी से कडी सजा हो।"

रमण महर्षि ने हँसते हुए कहा :"अरे ! ऐसा कहीं होता होगा ! वे भी हमारे भाई ही हैं। उन्हें थोडे ही पकडवा दिया जाता है भला !"

पर भक्त तो अपनी जीद पर अडे रहे। अत: रमण ने उनसे कहा कि "मान लो कि हमारे दाँत तले जीभ आ गई और कचर गई। लहू भी निकल आया तो क्या दोस्तो ! हम अपने हाथ में हथौडा लिये

उन दो-चार दांतों पर गुस्सा करके तोड डालेंगे ? नही....क्योंकि जीभ हमारी है तो दांत भी अपने ही हैं। किसे मारेंगे ?" महर्षि की ऐसी परम उदार क्षमा भावना देखकर भक्तों के शिश श्रद्धावनत हो गये।

117. हमेशा अन्य का विचार करो

एक पहलवान था। एक साथ चार दुश्मनों को बाथ में लेकर पीस डाले ऐसी उसकी ताकत थी।

हाई-वे रोड से सटकर उसका घर था। घर के बाहर बिजली का खम्भा था।

एक दिन उसकी दस वर्षीया बेटी खम्भे के पास बैठी हुई थी। सामान लादकर कोई ट्रक वहाँ से जा रहा था। ड्रायवर की भूल से ट्रक जोर से खम्भे से जा टकराया। एक ही क्षण में बच्ची भी दुर्घटनाग्रस्त हो गई। वह मर गई।

ट्रक वाला रूक गया। ड्रायवर ट्रक से नीचे उतरा। आसपास से दौड आये लोगों "मारो...मारो..." कहते हुए वहाँ जमा हो गये। ऐसे में लडकी का बाप –पहलवान घर से बाहर निकला। सारी हकीकत को जान-समझ लिया। लोग तो ऐसा मान रहे थे कि अब यह पहलवान उस ड्रायवर को मुक्के मार मारकर खत्म कर डालेगा।

पर नही...ऐसा हुआ नही। लोग ड्रायवर को पकडकर पीटाई कर रहे थे। पहलवान ने उसे छोड देने के लिए कहा। लोगों ने उसे छोड दिया।

ड्रायवर पहलवान के पैरों में गिर गया। हुई दुर्घटना को लेकर आँसू बहाते हुए माफी मांगने लगा।

पहलवान ने कहा,"भाई ! तुम्हारी कोई भूल नही है। भूल तो हम बाप-बेटी के पूर्व जन्म के पापों की है तुम तो निमित्त मात्र हो।" "ना...मुझे मार डालिये...अभी मार डालिये..."ड्रायवर ने कहा।

पहलवान ने कहा :"यह मुझ से नही हो सकेगा। मेरी बेटी की मौत के बदले में मैं तुम्हारे पुत्र को अनाथ बनाकर उसका जीवन बरबाद नही कर सकता। जाओ ! भगवान हमेशा तुम्हारा भला करें"

118. एकदम किसी का खण्डन नहीं करना चाहिए

शंकराचार्य का अद्वैतवाद ।

"ब्रह्म"के अतिरिक्त किसी भी तत्व का वे स्वीकार नही करता ।

अतः वे शक्ति देवी का कडे शब्दो में खण्डन करते थे । उनकी भाषा भी इतनी कटुतापूर्ण रहती थी कि शाक्त मत के उपासक भी क्षुब्ध हो ऊठते थे ।

जहाँ इस मत का प्रभाव अधिक था उस कश्मीर को भी शंकाराचार्य ने बख्शा नही । वहाँ जाकर "शक्ति" तत्व का खुलेआम, बेफाम खण्डन करने लगे । उनकी विद्वत्ता इतनी तो प्रकाण्ड थी कि शाक्त पण्डित भी उनके आगे टीक नही पाते थे ।

एक दिन की बात है । किसी वजह से उन्हें अतिसार हो गया । लगातार तीन दिन परेशान रहे।

इससे वे बहुत कमजोर हो गये थे । चौथे दिन सवेरे जब वे बहुत कमजोरी के कारण सोये हुए थे । इनमें इतना भी होश नही रहा था कि वे दो शब्द भी बोल सके । तब उनके पास एक दसवर्षीय कन्या गई ।

उसने शंकराचार्यजी को प्रणाम करके कहा कि "यदि आपके पास अनुकूलता हो तो मुझे आपके समक्ष ब्रह्म के अद्वैत स्वरूप के सम्बंध में कुछ जिज्ञासा शांत करनी है ।"

शंकराचार्य ने कहा कि "बालिका क्या तुम देख नही रही हो कि मैं कितना कमजोर हो गया हूँ...? मैं ठीक से बोल भी नही पा रहा हूँ ।"

"बिना शक्ति के मैं तुम्हारे साथ तत्वचर्चा कैसे कर सकताा हूँ ?"

"हे भगवन् ! क्या तत्वचर्चा में शक्ति की जरूरत पडती है ?" बाला ने पूरी गम्भीरता के साथ पूछा । "क्यों नही ?शक्ति की हर काम में जरूरत पडती है ।"शंकराचार्य ने कहा ।

यह सुनते ही बालिका ने अपना असली शक्ति माता का दिव्य रूप प्रकट किया । उसने कहा :"तो शंकर ! उसका खुलेआम खण्डन किस लिये ?"

तेजी को तो ईशारा ही होता है ना ! शंकर सोचने लगे । इससे उन्हें उनकी भूल समझ में आ गई ।

119. अपात्र को दिया नहीं जाता

एक बार रामकृष्ण परमहंस की कृपा विवेकानंद पर ऐसी उतरी कि जिसकी चाहत थी, उस निर्विकल्प समाधि का आस्वाद उन्होंने चखाया। माथे पर हाथ रखते ही विवेकानंद को समाधि लग गई।

यह बात जानने के पश्चात् रामकृष्ण के अन्य परम भक्त माथुरबाबु ने भी रामकृष्ण के पास निर्विकल्प समाधि का स्वाद चखने के लिए आग्रह रखा। गुरु ने उससे कहा कि वह गृहस्थ है। इस समाधि का अनुभव करना उसका काम नही है परंतु माथुरबाबु माने नही। वे जिद्द पर अडे रहे।

अतः एक दिन रामकृष्ण ने माथुरबाबु को निर्विकल्प समाधि दी, माथे पर हाथ रखकर...

दूसरे ही क्षण माथुरबाबु को समाधि लग गई। वे सूक्ष्म जगत के विराट सागर में गहरे जाने लगे। उनके सारे विकार शांत हो गये। वृत्तियाँ शांत हो गईं।

कि एकाएक माथुरबाबु समाधि से बाहर आ गये और वे गुरु रामकृष्ण से चीख चीखकर कहने लगे कि "यह आप क्या कर रहे हैं? आपने मुझे एकदम निर्विकार बना देना चाहते हैं क्या? अरे ! मेरी वृत्तियों को एकदम शांत-सुप्त कर दी !

क्या आप नही जानते कि मैं तो एक संसारी आदमी हूँ। मेरे पत्नी है,बच्चे हैं ,भरापुरा संसार है। यदि आप मुझे निर्विकार बना देंगे तो मेरी पत्नी का क्या होगा?उसके बारे में क्या आपने कभी सोचा भी है ?"

रामकृष्ण ने हंसते हुए कहा। "माथुर ! मैं इसी वजह से तुम्हारी कई दिनों की मांग को नकारता रहा परंतु तुम विवेकानंद बनने चले।

तुझे उसके प्रति ईर्ष्याभाव हुआ। फिर मैं क्या करूँ ?इसमें मेरा कोई दोष नही है कि तुम मुझे इस प्रकार कोस रहे हो !"

माथुरबाबु की समझ में अपनी भूल आ गई। उसने गुरु से क्षमायाचना की।

120. गुरू की भी कसौटी

एक बार रामकृष्ण परमहंस ने नाशिक-पंचवटी में वर्षावास किया। उनके दर्शनादि का लाभ लेने के लिए उनकी सांसारिक धर्मपत्नी शारदामणि देवी ने पंचवटी के रास्ते पर एक छोटा सा मकान किराये पर लिया।

रामकृष्ण रोज उस रास्ते पर से सुबह लगभग चार बजे नदी तट पर स्नान करने के लिए जाते थे।

स्वामी विवेकानंद तब गृहस्थ नरेन्द्र थे। उसे मन में शंका हुई। उसने अपने गुरु की कसौटी करने का निर्णय किया।

एक बार नरेन्द्र उनके पीछे चलने लगा। घना अंधेरा था फिरभी उनको बराबर लक्ष्य में रखा पर जैसे ही शारदामणिदेवी का घर आया कि पता नही क्यों ... नरेन्द्र को रामकृष्ण दिखने बंद हो गये। इससे नरेन्द्र का मन और सशंक हुआ और उसकी शंका द्दढ हो गई। उसने मन ही मन यह बात सोच ली कि गुरुदेव शारदामणि के घर में ही गये हैं।

नरेन्द्र उस घर के सामने ही खडा रह गया। अब गुरुदेव उस घर से बाहर निकले कि मैं उनको पकड लूँ और ऐसा दुष्ट आचरण करने के लिए उनको कोसुंगा। आदि विचार वह करने लगा।

प्रभात हुआ। चारोंओर प्रकाश फैल गया। अरे ! यह क्या ?गुरुदेव तो उसी नदी के किनारे की दिशा से भजन गाते हुए आराम से चलकर आ रहे थे।

नरेन्द्र तो उनको नदी की दिशा से आते देखकर दंग रह गया।

स्वयं कृत शंका को लेकर उसे बडा अफसोस हुआ। वह दौडकर गुरु के चरण पकडकर रोते हुए माफी मांगने लगा।

गुरु ने कहा ,"तुम्हें अपना समग्र जीवन मुझे सौंपना है। अतः किसी अन्य को न सौंप दिया जाये ,इसलिए ऐसा करना चाहिए। तुम ही मेरे सच्चे शिष्य हो।"

121. अन्य का भी विचार करो

रामकृष्ण परमहंस का शिष्य नरेन्द्र जब गृहस्थ जीवन में था तब वह जानता था कि गुरुदेव निर्विकल्प समाधि का आनंद कभी कभी मनाते हैं।

एक दिन आग्रहपूर्वक नरेन्द्र ने उस समाधि का रसास्वाद कराने के लिए गुरुदेव से बिनति की।

नरेन्द्र के प्रति रहे प्रेम के कारण गुरु ने उसके माथे पर हाथ रखा और तत्क्षण नरेन्द्र को समाधि लग गई। कई घण्टे तक वह समाधि में लीन रहा।

पुनः हाथ रखकर गुरु ने उसे समाधि से बाहर निकाला।

ऐसा दो-तीन बार हुआ।

हरएक बार नरेन्द्र किसी अद्‌भुत आनंद का अनुभव करता था। अतः एक बार उसने गुरु से कहा," मुझे हमेशा के लिए समाधि दें तो कितना अच्छा ! बस मैं उसीमें मस्त रहूँ।"

तब रामकृष्ण ने कहा :" कैसी पागलों जैसी बात कर रहा है ?जिस समय भारत में करोडों लोग गरीबी,बीमारी,बेरोजगारी,महँगाई और गुलामी से पीडित हो रहे हैं,उस समय उन्हें उन यातनाओं से मुक्त करने के बदले तुम अपने स्वार्थ की बात कर रहे हो ?

कैसा स्वार्थी है ?मैंने तुझ में जो शक्ति रखी है, वह जगदोद्धार के लिए है। नही कि मात्र तुम्हारी आत्म मस्ती के लिए।"

ये शब्द सुनने के बाद नरेन्द्र ने आजीवन उस बात को विस्मृत कर दिया। बाद में तो भारतीय प्रजा की अस्मिता,संस्कृति और उसके दुःख विमोचन के लिए उसने सारे प्रयत्न किये।

122. जल्दी मरने की होड

सिक्ख गुरु गोविंदसिंह के वे दो लडके थे। एक था दस वर्षीय और दूसरा था चौदह वर्षीय।

सरहिंद के नवाब ने उन दोनों लडकों को एकबार एकाएक कैद कर लिया। वह नवाब इस्लाम धर्म का जुनूनी अनुयायी था। उसने गोविंदसिंह से कहलवाया कि "यदि तुम्हारी दोनों संतानें इस्लाम अंगीकार करेंगी तो उनको जिंदा छोड दूँगा। अन्यथा दीवार में जिंदा चुनवा दूँगा।"

बादशाह के इस संदेश को क्रूर मजाक के साथ ठुकरा दिया।

बादशाह अति कोपायमान हुआ। उसने दोनों लडकों को दीवार में चुन देने के लिए आमने सामने दो दीवारें तैयार करवायी।

पूर्व घोषित समायानुसार,सैंकडो लोग वहाँ जमा हुए। सारे लोग बादशाह से नफरत करने लगे पर राजसत्ता के आगे निर्माल्य प्रजा का कितना जोर ?

अंततः दोनों लडकों को आमने सामने खडे रख पैरों से शुरु करके ईंट पर ईंट रखी जाने लगी। दोनों बालकों के मुख पर तनिक भी ग्लानि की रेखा नही थी। सचमुच दोनों शेर के बच्चे प्रतीत होते थे।

ऐसे में बडे भाई की आँखों में एकाएक आँसू बहने लगे। छोटे भाई ने उसे आश्वस्त करते हुए कहा,"अरे !

तुम क्यों रो रहे हो ?ऐसी शहादत तो देव दुर्लभ है। देवों को भी न मिले। महापुण्यशाली को ही प्राप्त होती है।"

बडे ने छोटे से कहा ,"रो तो इस लिये रहा हूँ कि तुम कद में मुझसे छोटे होने पर तुम्हारी नाक पर ईंटें जल्दी रख दी जाने से तुम्हें इस शहीदी का वरण करने का सौभाग्य जल्दी नसीब होगा। उसके बाद मुझे मिलेगा।

यदि मैं तुमसे छोटा होता तो कितना अच्छा होता !"

123. जैन ही जगत को हिंसा से बचा सकेंगे

"जैनधर्म मेरी दृष्टि में "नामक किताब में विनोबाजी ने निम्नांकित दो प्रसंगों का उल्लेख किया है :

(१)चीन में दो कम्युनिस्ट पार्टियों के बीच सशस्त्र लडाई हुई। एक पार्टी ने विरोधी पार्टी के सभी लोगों को मार डाला। वहीं पर विजेता पार्टी ने विजयोत्सव मनाया। उसमें विरोधी पार्टी के लोगों के शवों को काटकर उनके मांस के साथ शहद मिलाकर प्रसाद के तौर पर विजय की खुशाली के रूप में खाया।

(२)शांघाई में प्रतिवर्ष चालीसलाख सर्पों को मारा जाता है। उनके निर्जीव शरीर पर गुड लगाकर वहाँ के लोग उस साँप को कच्चा ऐसे खा जाते हैं जैसे मिठाई खा रहे हों।

विश्व में चल रही ऐसी अति भयानक संहारलीला का निरूपण करते हुए वे बता रहे हैं कि मानव जाति ने सृष्टि पर अब एक भी जीव को बख्शा नही है।

टिट्टे का अचार बनने लगा है। पतंगे की चटनी बनने लगी है। साँप से सूप बनाया जाता है। केकडे कच्चे ही गुड के बदले में खाये जाते हैं। लोबस्टर की सबजी बनती है; पिल्लू छौंके हुए मिर्च की तरह खाया जाता है।

"जगत की इस संहार लीला को अब कोई रोक नही सकता। हाँ ,शायद उसे कोई रोक सकता है तो मात्र अहिंसा के परमोपासक जैन ही रोक सकते हैं।"

विनोबाजी को शायद मालूम नही होगा कि जैनों में भी मटन,आमलेट,कस्टर्ड पाउडर,सैंडवीच आदि तेजी से व्याप्त होने लगा है।

उनको शायद यह भी पता नही होगा कि घी में चरबी,चीझ में रेनेट से लेकर निर्जीव अंडे की पोल्ट्री,भीवंडी के आधुनिक कतलखाने तक के व्यवसाय में अनेक जैन जुड चुके हैं।

124. बैर का विसर्जन

कविवर दलपतराम और विख्यात नाटककार डाह्याभाई धोळाशा के बीच बरसों से परस्पर मनमुटाव था। यह अनबन सार्वजनिक रूप से एक दूसरे पर कीचड ऊछालने तक आगे बढ गया था।

दोनों वृद्ध हो गये। एक बार डाह्याभाई मे किसी मुनि का प्रवचन सुना। उस प्रवचन में बैर के करुण अंजाम का वर्णन करके मुनिराज ने चाहे कैसी भी बैर की गाँठें हों, उनको खोल देने की हृदयस्पर्शी प्रेरणा की।

उनके शब्दों से डाह्याभाई बहुत प्रभावित हुए।

घर न जाते हुए सीधे ही वे कविराज दलपतराम के घर गये।

दलपतराम ने उनका बडी रुक्षतापूर्वक स्वागत करते हुए कहा-"पधारिए।"दोनों झूले पर बैठे। कुछ देर बाद डाह्याभाई ने बात की शुरुआत की।

उन्होंने कहा –"युद्ध की एक ऐसी रीत होती है कि यदि किसी एक पक्ष युद्ध को समेट लेना चाहे-संधि करना चाहे तो वह पक्ष सामनेवाले पक्ष को श्वेत रंग की ध्वजा फहराकर दिखाता है।

"ऐसा हो तो सामनेवाले पक्ष को भी श्वेत रंग की ध्वजा को फहराना ही पडता है और युद्धविराम घोषित करना पडता है।

इतना कहकर डाह्याभाई ने अपने माथे पर रखी श्वेत पगडी को उतारकर कहा :" आज मैं आपके साथ संधि करने के लिए आया हूँ। मैंने आपकी बहुत निंदा की है। मैं आप से क्षमा चाहता हूँ। इतना कहते कहते तो डाह्याभाई की आँखें छलक ऊठी।

कवि दलपतराम ने भी तुरंत उन्हें गले से लगा लिया। दोनों बहुत रोये।

अश्रु के रूप में क्षमा बह निकली।

125. कितने चुस्त साधु!

उस महान मुनिराज का नाम धर्मरुचि था। मुनिजीवन के प्रत्येक नियम का वे बडी दृढता के साथ पालन करते थे। ऐसा करने में कईबार उनकी कसौटी भी हो जाती थी। फिरभी उनके चेहरे पर छायी प्रसन्नता कभी भी कम होती नही थी।

एक बार विहार के दरमियान वे रास्ता भूल गये। संध्या के ढल जाने के बाद –अंधेरे में वे विराम के स्थान पर पहुँचे। ऐसा होने के कारण वे (पिशाब इत्यादि करने के लिए) निर्जीव जगह की रोज बरोज की तरह तलाश कर नही सके थे।

योगानुयोग उस रात उन्हें पिशाब की शंका हुई। वह शंका तीव्र हुई लेकिन अब जब निर्जीव जमीन देखी ही नही थी तो कहीं भी पिशाब करने से यदि वहाँ पर चींटी आदि के बिल हों तो उसमें पिशाब के उतर जाने से न जाने असंख्य जीवों की हिंसा हो जाये।

इस करुणाभाव से प्रेरित उस मुनि ने उजाला न हो तब तक ऐसे ही बैठे रहने का संकल्प किया।

प्रभात होने में अभी तो खासे पाँच घण्टे बीताने थे। शंका इतनी तीव्र हो गई थी कि यदि उसका निवारण न हो तो मुनि के प्राण अवश्य निकल जायँ।

ऐसे समय में शास्त्र में अपवाद मार्ग का सेवन करने की छूट दी गई है पर यह महासत्वशाली मुनिराज अपवादमार्ग का सेवन करना नही चाहते थे।

परंतु उनकी धर्मचुस्ती काम कर गई।

उस समय आकाशमार्ग से कोई देवात्मा गुजर रहे थे। उन्होंने सारी परिस्थिति को समझ लिया। मुनि ने भावपूर्वक उनकी वंदना की। दूसरे ही क्षण अपनी दिव्य शक्ति के बल पर उस प्रदेश में भरपूर प्रकाश बीखेर दिया। मुनि ने उसका लाभ ऊठाया और लघुशंका का निवारण कर लिया।

सच्चे अर्थ में किया गया धर्म कसौटी के वक्त में सहाय करता ही है।

126. अंतकाल में तो संभल जाओ

हितोपदेश की यह कथा है ।

एक तालाब था । उसमें अनेक मछलियाँ थी । एक दिन शाम के वक्त तालाब के किनारे पर खडे मछेरे बात करने लगे कि "इस तालाब में मछलियाँ ज्यादा हों ऐसा लगता है । अतः हम कल इस तालाब में मच्छीमारी के लिए आयेंगे ।"

तालाब में रह रही तीन मछलियों ने यह बात सुन ली ।

अतः एक मछली तो तुरंत उस तालाब का पानी जिस नाली के द्वारा दूसरे सरोवर में जाता था ,उस सरोवर में चली गई ।

अन्य मछलियों के मन में मछेरों की बात को लेकर शंका उत्पन्न हुई कि क्या वे सचमुच इस तालाब में मच्छीमारी के लिये आयेंगे ?

तीसरी मछली तो इस बात को लेकर लापरवाह रही । उसने कहा "यहाँ कोई मछेरा आनेवाला नही है ।

अतः कोई इस बात की चिंता न करें ।"

दूसरे दिन सचमुच उन मछेरों ने वहाँ जाकर अपना जाल बिछाया ।

उस दूसरी और तीसरी मछली को भी उन्होंने अनेक मछलियों के साथ जाल में पकड लिया।

अब दूसरी मछली सोचने लगी । बहुत विचार कर लेने के बाद उसने वहाँ से सरकने की युक्ति को खोज निकाला ।

उसने ऐसा स्वांग रचाया कि मानो वह मर गई है । उसने हिलना डूलना बिलकुल बंद कर दिया । उसकी ऐसी दशा देखकर मछेरों ने सोचा कि एक मुर्दे की दुर्गंध से अन्य मछलियाँ भी बास मारने लगेंगी । इससे तो अच्छा यह होगा कि उसे पानी में छोड दिया जाये ।

आखिरी क्षणों में भी संभली हुई मछली इस प्रकार बच गई ।

127. कैसा अविश्वासी संसार!

उसका नाम था अखो। जाति से वह सुनार था। लोगों को सोने के जेवर बना देता था और वाजिब वाजिब मेहनताना लेता था।

उसके कोई बहन नही थी। उसने किसी स्त्री को अपनी बहन माना था। सगे भाई से भी बेहतर व्यवहार वह उस बहन के साथ रखता था। किसी भी वक्त उसकी संकट की घडियों में सहाय करने के लिए तत्पर रहता था।

इस बहन ने एक बार अखा को थोडा सोना दिया। अखा ने उसके कहे अनुसार जेवर बना दिया। यह स्त्री अपनी मुँहबोली बहन थी। इस लिये उसने विशेष भाव पूर्वक यह जेवर बना दिया था और उसकी मजदूरी भी अन्य लोगों के मुकाबले कम ली। इतना ही नही अपनी तरफ से कुछ और सोना जोडकर वह जेवर (सोने की माला) बना दी थी।

कमनसीबी से उस स्त्री को उसके स्वजनों ने भडकाया कि "सोनी कभी भी चोरी किये बिना रह नही सकता। वह तो सगी बहन को भी नही छोडता।"

अतः उस स्त्री ने किसी अन्य सुनार से उस चेईन की परख करवायी। उस सुनार ने बताया कि इसमें तो जरा भी गडबड नही हुई है। ऊपर से अखा ने अपनी तरफ से कुछ सोना जोडा हो ऐसा लगता है।

दूसरे दिन सहज भाव से यह स्त्री अखा के पास गई। उसने चेईन में काटकूट होने की वजह से वह चेईन गले में डाली नही थी।

यह बात अखा की नजर से बाहर नही रही। उसने सारी जानकारी प्राप्त कर ली। उसके दिल को बहुत ठेस पहुँची। उसे समग्र समाज के प्रति नफरत हो गई।

उसने संसार का त्याग कर दिया। जो आक्रोश उसके दिल में जगा था। उसीके आधार पर उसने छप्पे लिखकर लोगों को छप्पे रूपी कोडों की मार मारी। विशेष रूप से धर्मनिष्ठ कहलानेवाले लोगों की बहुत निंदा की।

128. नीति के धन का चमत्कार

एक राजा था। उसे न्यायमंदिर का निर्माण करना था लेकिन शिल्पी ने उसे सलाह दी कि यदि सचमुच न्यायमंदिर की रचना करनी हो तो उस इमारत की बुनियाद में न्याय की कमाई की एक सोनामुहर तो पडनी ही चाहिये।

राजा ने नगर में तलाश करवायी तो न्याय नीतिपूर्वक व्यवसाय करनेवाला एक सेठ मिल गया । राजा ने अपना कासिद भेजकर उस सेठ से एक सोनामुहर मंगवाई।

सेठ ने कहा;"यदि न्याय की सोनामुहर चाहिये तो राजा का स्वयं आना ही न्यायपूर्ण कहलायेगा।"

राजा ने स्वयं आकर सोनामुहर मांगी तब सेठ ने कहा "इस प्रकार आप जो सोनामुहर ले जायेंगे वह हराम-अन्यायपूर्ण कहलायेगी। अतः आप मेरा कुछ काम करके उसके बदले में सोनामुहर ले जाइए।"

राजा ने सेठ की बात का स्वीकार की तो सेठ ने तीन दिन तक बहियाँ लिखवाई। उसके पारिश्रमिक के रूप में सोनामुहर लेकर राजा बिदा हुआ।

राजा तो न्याय,नीति के ये सबक जानकर अत्यंत चकित रह गया था। अब तो उसे नीति के इस धन की कसौटी करनी थी।

उसने वह सोनामुहर मछेरे को दी। रात्रिवेला में सोनामुहर के प्रभाव से मछेरे को अपने व्यवसाय के पाप के प्रति नफरत हुई। उसने मच्छीमारी का व्यवसाय हमेशा के लिये छोड दिया।

यह जानकर राजा तो दंग रह गया।

बाद में उसने यह सोनामुहर एक खाकी साधु को दी। उस रात साधु की मति मार गई और रात्रि के बारह बजे वेश्या के पास चला गया और शराब भी बहुत पी !

129. चीमन मारवाड़ी का दुसरा नाम ''खुमारी''

कुछ दशक पहले की यह घटना है । नाट्यकला (रंगभूमि) के उकृष्ट कलाकार नट चीमनभाई ।

उनके प्रशंसक उन्हें "चीमन मारवाडी" कहते थे । मुंबई की रंगभूमि के मंच पर जब वे आते थे तब सूरत और नवसारी से लोग मुंबई दौडे चले आते थे ।

दूसरे शब्दों में नाट्यकला के आसमान में वह मध्याह्न पर चमकनेवाले सितारे थे । उन्होंने अपने चरमोत्कर्ष काल में जानदार अभिनय करके लाखो रूपये कमाये थे ।

पर अफसोस ! एक दिन उस पर लक्ष्मी का नशा सिर पर चढ गया । एकरात उसने एक योजना तैयार की।

उस योजनानुसार उसने अपने बीछौने पर एकसौ रूपये के नोटस बीछा दिये । उस पर वह सो गया । एक घंटाभर तो वह अकेले ही बीछौने में करवटें बदलता रहा और कुछ बडबडाता रहा । क्या प्रतिष्ठा है अपनी ! क्या किसीने इस प्रकार लक्ष्मी पर लेटकर करवटें ली होगी ?"

पर यह क्या ? सुबह होते ही एक के बाद ए दुखद समाचार मिलते गये । जिन जिन धंधों में उसने अपने पैसे निवेश किये थे,वे सारे रुपये मंदी की हवा में बह गये और धंधे में हजारों का नुकसान हो गया ।

मात्र चौबीस घंटों में चीमन अमीर से गरीब हो गया । कुछ ही महिनों में वह लैनदार न रहकर कर्जदार हो गया ।

चीमन मारवाडी के ही शब्द "लक्ष्मी का अहंकार किया तो पाप का घडा फूट गया।"

ऐसे दिन आ गये कि जिसकी अदा देखने के लिए पहले से बुकिंग हो जाता था और मूँहमांगा दाम मिलता था,वह चीमन मारवाडी काम की खोज में निकलने लगा । मंच के निर्देशकों के बंगलों के चक्कर काटने लगा ।

उस समय उसकी दयनीय अवस्था को देख उसे कोई न कोई पांच या दस तो कभी एकसौ रूपये

दे देता था तब वह हंसते हुए कहता था कि "ऐसी मुफलीसी में जीने से बेहतर तो मैं विषपान करके मर जाऊँ।

"मैं तो काम मांगता हूँ;रंगमंच ऊपर यदि मुझे झाडू लगाने के लिये कहा जायेगा तो मैं वह काम करूँ गा। उसके बदले में मुझे पैसा दीजिए। मैं याचक बनकर तो आया ही नही हूँ। उसकी जिंदगी में ऐसे भी दिन आ गये कि पति-पत्नी को सात सात दिन तक भूखा रहना पडा। काम की खोज में चारोंओर भटकना पडा। ऐसे ही किसी दुर्भाग्यपूर्ण दिवस किसी प्रसिद्ध अखबार का फोटोग्राफर चीमन मारवाडी के पास गया।

उसने यह प्रस्ताव रखा कि "मैं आपकी विलक्षण अदावाला फोटो लेने के लिए आया हूँ। एक बार जो बुलंदी पर विराजित था,उस व्यक्ति को एक जून खाने के भी लाले पडते थे। ऐसे विषम काल में व्यक्ति के मुख पर कैसी भयंकर हताशा होगी ? दूर सुदूर आशा की किसी क्षितिज पर या अतीत की भव्यता पर उसकी आँखें कुछ पढ रही हो-ऐसी अदावाला –दूसरे शब्दों में कहें तो भग्नमना ,जीवन से थके हारे दीनतापूर्ण चेहरेवाला फोटो मैं लेना चाहता हूँ और मुझे अपने अखबार में चमकाना है और उसके नीचे लिखना है -

मध्याह्न का सूरज यकायक समुद्र की गोद में सीधा जल निमग्न हो गया !"

फोटोग्राफर की बातें चल रही थी। चीमनभाई यह सुन रहे थे। उसी वक्त उनके बालसखा उनसे मिलने के लिये आये।

अतः उनसे बतियाने लगे। बातचीत के दौर में वे अपनी भूख की पीडा,धन की परेशानीपूर्ण तंग हालत,बेकारी की चिंता सबकुछ भूल गये और उन्होंने खुद रंगमंच पर जिन जिन राजाओं के कैसे कैसे अभिनय किये,उसका वर्णन करने में वे इतना तल्लीन हो गये कि मानो वे उस समय का अभिनय अभी कर रहे हों !

इस बातचीत में दो घंटे बीत जाने पर वह फोटोग्राफर जाने के लिए अधीर हुआ। उसने उन दोनों की बात को बीच में ही काटते हुए कहा,"साहब ! मुझे तो आप से मात्र एक ही मिनट का काम है। मुझे दीनतापूर्ण हाल में दूर क्षितिज पर दृष्टिपात करते हुए अत्यंत टूटे हुए और उलझे हुए चेहरे की आप

एक अदा दीजिए। मैं क्लिक कर दूँ बाद में आपका अनहद धन्यवाद करते हुए रवाना हो जाऊँगा।"

उस समय चीमन मारवाडी के मुख पर खुमारी का ऐसा तेज निखर ऊठा ,शब्दों में ऐसी तो आग पैदा हुई,रोम रोम ऐसे खिल ऊठे कि उन्होंने उस फोटोग्राफर को सुना दिया कि "भाई ! एकबार मैं हीरो था। उसमें से मैं जीरो हो गया।

एकबार मैं आलेशान बंगले में रहता था,वहाँ से मैं अब किराये के झोंपडे में आ गया तब भी मेरे चेहरे पर उदासी का कोई असर तक नही हुआ। मैंने अपनी मस्ती को अभी खोया नही है। अपने प्रभाव की एक भी रेखा अभी तक धुँधली पडी नही है।

तो फिर मैं आज तुम्हें ऐसा टूटा-मुरझाया हुआ पोज कैसे दे सकता हूँ। मुझे तो ऐसा चेहरा बनाना मुश्किल से मुश्किल हालातों में भी नही आया है। इतना तो समझो।"

भाई ! तुम चलो ! मेरे लिये यह बात बिलकुल असम्भव है। मेरा रोता हुआ चेहरा देखने की आशा तो मेरे मरते दम तक तुम रख नही सकते।"

एकदम हतोत्साह और टूटे हुए,सात दिन के भूखे आदमी में भी कैसी खुमारी ! प्राप्त जानकारी के अनुसार यह कलाकार आज बयासी वर्ष की अवस्था में भी जिवीत है। अपने क्षेत्र विशेष के ऐसे नरवीरों की बेनीफीट नाईट का आयोजन उसके चाहनेवाले करे तो यह समयोचित होगा।

पर चीमन मारवाडी कृष्ण और सुदामा का नाट्यवस्तु स्वयं तैयार करके ,स्वयं श्रीकृष्ण का अभिनय करके अपनी बेनीफीट नाईट की स्वयं तैयारी में लगे हैं।

स्वार्थी इस दुनिया ने कितना जल्दी किसीको भूल जाने की कला को विस्मृत कर जाना सीखा होगा?

130. सुभाष : ''मुझे अपना ''सर्वस्व'' दे दो।''

"गांधीजी ! आपकी अहिंसा आधारित राजनीति। मैं एक दिन अवश्य स्वीकार करूँगा पर भारत की प्रजा को अंग्रेजों की गुलामी से मुक्त करने के लिए तो मुझे हिंसक मार्ग ही अपनाना पडेगा। इतना काम मुझे अपने ढंग से कर लेने दीजिए। तत्पश्चात मैं हमेशा के लिए आपका अहिंसक शिष्य बनकर रहूँगा।"

यह शब्द थे सुभाषचंद्र बोस के। गांधीजी की अहिंसा द्वारा अखण्ड भारत को आजादी मिलेगी,इस बात में उनको तनिक भी श्रद्धा नही थी।

और ...उन्होंने तीस हजार लोगों की "आजाद हिंद फौज" की स्थापना की।

किसी भी काम के लिए पैसों की तो जरूरत रहती ही है। उपरांत उमदा नीतिमान, शुद्धिमान, परिश्रमी

और खुमारीवाले लोगों की जरूरत पडती है। नेताजी बोस के पास ऐसे अनेक लोग थे ; पर उन्हें सैनिक जीवन की तालीम देने के लिए और खिलाने के लिए जिस धनराशि की जरूरत थी,वह नही थी।

संपत्ति की प्राप्ति का काम भी नेताजी को ही करना था। उन्होंने इस आह्वान का स्वीकार किया।

जिसने अपने अंग को ढाँकने के लिए भी पैसों के लिए याचक वृत्ति नही की है ;ऐसे निःस्पृह व्यक्ति को देश के लिए पैसा मांगने में शर्म क्यों आये भला ?

ऐसे उमदा कार्य में यदि किसी को लाज आती हो तो ऐसे पुरुषों के शरीर पर तो महिलाओं के वस्त्र ही अच्छे लगेंगे !

नेताजी खुलेआम सम्पत्ति की भीख मांगते थे। तेजाबी वाणी में धनिकों में देशभक्ति में रंग जाने के लिये समझाते थे।

एकबार एक विराट सभा में उन्होंने धन की झोली छलका देने की प्रेरणा की। उस विषय पर दिया गया उनका वक्तव्य ! धनिकों के देह के एक एक अंग में आग दहक जाये ऐसी जलते हुए अंगारों सी वाणी से युक्त वह वक्तव्य था। मानों उनके मुख से देशभक्ति की लपलपाती ज्वालाएँ

निकल रही हों। इस वक्तव्य के बीच में ही एक धनिक ने खडे होकर कहा : "लिखिए मेरी तरफ से एक लाख।"

नेताजी ने कहा :"नही नही,एक लाख रुपयों से तो कुछ नही होता।"

तुरंत दूसरा अमीर खडा हुआ ओर उसने कहा :लिखिए मेरे पांच लाख।"

तीसरे ने कहा :लिखिये मेरे सात लाख।"सबको अपने हाथ से नकार सूचक हाथ हवा में हिलाते हुए सुभाष ने कहा,"अरे ओ धनवानों !

इतनी मामूली धनराशि से कहीं देश को आजादी दिलायी जा सकती है भला ?आप लोग कैसी बालिश बात कर रहे हैं?"

भरी सभा में सन्नाटा छा गया। सुभाष को क्या चाहिये ? कितनी धनराशि दें तो उन्हें संतोष हो।" सबके मन में सवाल उमड-घुमड हो रहे थे।

कुछ क्षण निस्तब्ध गुजरे। समग्र सभा में देशभक्ति की अगनज्वाला फेल गई थी.उसमें ज्यादा क्षणों की खामोशी भी असह्य थी।

ऐसे में दोनों तरफ से दो युवा-करोडाधिपति खडे हुए। दोनों ने समवेत ताल स्वरों में एकसाथ पूछा,"तो आपको क्या चाहिये ?आप बता दीजिए।"

नेताजी ने कहा ,"मुझे आपसे आपका "सर्वस्व" चाहिये। राष्ट्र की सेवा के लिये आप अपनी करोडों रुपयों की सम्पत्ति भारत माता के चरणों में अर्पण कर दो ऐसी मेरी ईच्छा है।"

और एक पल का भी विचार किये बिना उन दोनों नरबंकों ने घोषणा की :

"सर्वस्व...कबुल...कबुल।"उसी वक्त सभा ने "भारतमाता की जय" का बारबार गगनभेदी जयकारा किया।

सुभाष ने दोनों युवाओं को मंच पर बुलाया। दोनों को प्यार से अंक में भर लिया। सुभाष की आँखें हर्षाश्रु बरसाने लगी।

उन्होंने घोषित किया ,"मेरी सामग्री की जरूरत अब पूर्ण हो गई है। भारतमाता के इन वीर सपूतों

ने मुझे आजादी प्राप्ति की जंग खेलने के लिये बहुत ताकत प्रदान कर दी है । मैं उनका अंत:करणपूर्वक आभारी हूँ।"

उन दो युवाओं के नाम थे-श्री हेमराज रणछोडदास बेटाई और श्री हबीबखान।

उसी कार्य के लिये सुभाष ने एकबार महिलाओं की बडी सभा में तेजाबी प्रवचन किया। बहनों को उनके जेवर दान कर देने के लिये कहा तो फटाफट सारे जेवर उतरने लगे। इन आभूषणों का बहुत बडा ढेर लग गया।

सुभाष ने "लक्ष्मीबाई रेजीमेंट "की स्थापना की और उसमें वीरांगनाओं को भरती किया।

एकबार सुभाष ने उनको पहनाये गये हार की बोली शुरू की। खुद ने पांचसौ रुपयों की बोली से प्रारम्भ किया।

बोली पांचलाख पर पहुँचने से सुभाष अति प्रसन्नता अनुभव करने लगे। जहाँ वे पांचलाख की बोली लगानेवाले को हार पहनाने जाते हैं कि उस सभा में स्थित एक करोडाधिपति युवक ने जोर से गर्जना करते हुए कहा :

"मेरा सर्वस्व।" और सुभाष मंच पर से सीधे दौडकर उसके पास पहुँचे और उस युवक को छाती से लगा लिया और उसके गले में हार पहना दिया !

यह तो थी देशभक्ति प्रेरित सम्पत्ति के समर्पण की।

जब धर्मसंस्कृति की भक्ति से प्रेरित होकर इस प्रकार "सर्वस्व" का दान कर देनेवाले चार कुबेर जगत में जन्म लेंगे तब आर्य महाप्रजा की संस्कृतिरक्षा का कार्य भी अति सरल-सुगम हो जायेगा।

हाय ! आज तो "अरे; संस्कृति रक्षकों को डेढसौ रूपयों की लागत दिखानेवाला एक पैम्फ्लेट मुद्रित कराने के लिये भी दस-दस रूपये एकत्र करने के लिये अनेक नरकुबेरों की दाढी में हाथ डालना पडता है।

131. क्रान्तिवीर भगतसिंह

दिल्ली की पार्लामेंट में सदस्यों की उपस्थिति में तीन युवाओं ने यकायक इस प्रकार बम विस्फोट किये कि किसी की जानहानि न हो। दोनों अपने आप पकडे गये। भाग छूटने की कोई बात ही नही थी। ब्रिटीशरों द्वारा बनाये जा रहे काले कानून,जुल्म इत्यादि के खिलाफ प्रजा का खून गर्म करने की योजना इस बम विस्फोट के पीछे थी।

उनके नाम थे :भगतसिंह,राजगुरु और सुखदेव। उनके विरुद्ध मुकदमा चला। फांसी की सजा घोषित हुई। मृत्यु की वेला का वसीयतनामा बनाने के लिए बुलाये गये प्राणनाथ मेहता को भगतसिंह ने अंत में लिखवाया,"इस देश में पुन: जन्म लेकर मातृभूमि की अधिक सेवा करूँगा। आजादी की जंग के सर्वोच्च नेताओं को मेरे अंतिम प्रणाम।"

जिस लाहौर सेन्ट्रल जैल में उन्हें फांसी दी गई। उसके जेलर खानबहादुर महम्मद अकबर को भगतसिंह के प्रति विशेष लगाव था। उसने नीजितौर पर चिट्ठी लिखकर बताया कि "यदि बचना हो तो मैं बचा लूँ।" जवाब में भगतसिंह ने स्पष्ट ना कहा। उपरांत उन्होंने बताया कि "क्रान्तिदल में मेरा स्थान केन्द्र में है। यह काम सौंपकर दल ने मुझे यश के सर्वोच्च शिखर पर आरूढ किया है।

अब मैं जिंदा रहूँगा तो भी देश की सेवा करने के लिये इससे बढकर कोई काम मुझे मिलनेवाला नही है। उपरांत भागकर जिंदा रहने से आजादी की जंग की ताकत कमजोर पड जायेगी और खुशी खुशी फांसी के फंदे पर चढूँगा तो हजारो माएँ अपने लाडले बेटों को मेरी वीरगाथा सुनायेंगी। जिससे अन्य कई भगतसिंह पैदा हो जाने से गोरे लोगों के जल्लाद शासन को समुद्रपार ढकेल देते में ज्यादा देर नही लगेगी।

"अब मुझे ऐसा अनुभव हो रहा है कि इस भारत में मेरे जैसा अन्य कोई भाग्यशाली नही है। मैं अपनी अंतिम कसौटी की प्रतीक्षा कर रहा हूँ। कब वह धन्यातिधन्य क्षण आयेगा ?" तीनों क्रान्तिवीरों ने फांसी के फंदे पर चढने के कुछ ही मिनट पूर्व आनंद पूर्वक रसगुल्ले खाये थे।

लाहोर जैल के चीफ वोर्डर चतरसिंह फांसी के आखिरी दिन भगतसिंह के पास गये थे। वोर्डर ईश्वरपरायण थे। वे सिक्ख थे। भगतसिंह भी सिक्ख थे। चतरसिंह ने भगतसिंह को गुरुवाणी का पाठ

करने की प्रेरणा दी । उसने कहा कि "आपकी बात सही है परंतु यदि मैं आखिरी क्षणों में ईश्वर की शरण लूंगा तो कुछ लोग मेरे खिलाफ ऐसा प्रचार करेंगे कि "भगतसिंह मौत से डर गया था । अतः उसने अंतकाल में ईश्वर की शरण ली ।"ना...ना...अपनी कायरता की खतौनी का कोई निमित्त मुझे किसी को देना नही है । मैं कायर हूँ भी नही ।

तीनों क्रान्तिवीरों ने फांसी लगानेवाले जल्लादों से कहा :"हमें हथकडी पहनने की आवश्यकता नही है । हमारे मुख पर काला बुर्का भी नही रखना । हम अपनी मौत आनंदपूर्वक देखेंगे ।"

आखिरी वेला में तीनों ने परस्पर प्रेमपूर्वक एकदूसरे को छाती से लगा लिया ।

राष्ट्रभक्ति के गीत गाने लगे ।

वे फांसी के मंच के निकट पहुँच गये । उस समय वहाँ खडे मेजिस्ट्रेट से भगतसिंह ने कहा :"आप खुशकिस्मत हैं कि आपको यह देखने को मिलेगा कि भारत के क्रान्तिवीर कैसी प्रसन्नता के साथ मौत से गले मिलते हैं !"

अंत में इन्किलाब जिंदाबाद बोलकर क्रान्तिवीरों ने अपने ही हाथों फांसी का फंदा गले में डाल दिया । यह समय था –इसवीसन १९३१ ,३१ मार्च ,शाम ७-२३ मिनट का ।

विदेशियों की गुलामी की जंजीरों को तोडकर फेंक देने के लिये दिये गये ये बलिदान विदेशी एजेंट हुए लाखों भारतीय लोगों द्वारा नाकाम बनाये जा चुके हैं ।

किसी कायमी गुलामी की दिशा में भारत की प्रजा तेज गति से रहस्यात्मक रूप से घसीटी जा रही है ।

ना... आजादी का यह आंदोलन भी "कायमी गुलामी" के खतपत्र का ही एक लिखित हिस्सा था परंतु उसका तो उन शहीदों को अहसास तक नही था ।

अब तो भगवान ही बचाये । सर्वनाश की खाई के कगार पर सारे भारत की प्रजा अब तो आ खडी हो चूकी है । कैसे बचा जायेगा ?

यही क्रूरता से भरा अनुत्तरित यक्ष प्रश्न है ।

132. मानवता के धर्म की भी कैसी ताकत!

उस गाँव का वह ऊल्टापल्टा करनेवाला चोर था। गाँव के सुरक्षाकर्मियों ने उसे पकडने के लिये कई प्रयत्न किये। आखिरकार नगर के राजा ने अपनी कमर कस ली।

पहली ही रात में राजा ने चोर को पकड लिया और अपने ही साथ पलंग के नीचे जमीन पर सुलाया। उसके पैरों में बेडियाँ लगी हुई थी। बेडी को बडा ताला लगा दिया गया था।

पर यह तो महाउस्ताद और ऊल्टापल्टा करनेवाला चोर। रात के बारह बजे थे। चोर ने अपनी काबीलियत से बेडी को खोल दिया। पीछेवाली खिडकी से नीचे उतरकर चोरी करने के लिये निकल गया। वह एक घर में घुसा। वह घर अत्यंत कमनसीब गरीब परिवार का घर था। पति मजदुरी करने के लिये बहुत दूर चला गया था। सास और बहू मिलाकर दो ही लोग घर में थे।

बहू की गर्भावस्था के दिन लगभग पूरे हो चुके थे।

रात्रि के एक बजे बहू ने अपनी सास को सख्त भूख लगी होने की शिकायत की।

उसने सास से कहा कि ;"माँ ! मुझे कुछ खाने को दो। मेरे पेट में जलन हो रही है।

सास ने कहा"बेटा ! आज तो घर में अनाज का एक दाना भी बचा नही है। छाछ तक नही है। तुम्हें क्या दूँ ?"

"अरे माँ ! मेरे पेट में बच्चा है। उसके बारे में तो कुछ सोचो। उसके खातिर भी मुझे कुछ खाने के लिये दीजिए।"अश्रुपूरित आँखों से बहू ने सास से कहा।

कुछ याद आते ही बहू ने पुनः कहा :" "माँ ! वह जो आटे वाली पतीली है ना ?उसमें आटा नही है ,यह तो मैं जानती ही हूँ पर यदि उस पतीली को पानी से धोकर मुझे कुछ दो तो उस चिपके हुए आटे का धोवन पीकर भी मुझे कुछ राहत होगी।"

सास ने कहा;" बेटा ! कल तो तुझे उसके धोवन से ही बाजरी की राब बनाकर पिलायी थी। अब तो उस धोवन की भी उम्मिद रही नही है।

"अब तो बेटा ! भगवान हम पर प्रसन्न हो जाये तो कुछ बात बने। अरे ! वह तो मिठाई से भरा

थाल भी दे सकता है ,उसकी शक्ति के बारे में तो क्या कहा जा सकता है ? अत: अब तो हम दोनों मिलकर भगवान का नाम स्मरण दत्तचित्त होकर करें।"

सास-बहू के बीच की सारी बातचीत उस चोर ने ध्यान से सुनी। एक तो ऐसी भयानक गरीबी और ऊपर से सगर्भा स्त्री की भूख ...आदि के बारे में सुनकर वह तो अवाक् रह गया। उसकी आँख से आँसू टपकने लगे। सास का अंतिम वाक्य सुनकर वह घर से निकल गया। सीधे एक हलवाई की दुकान पर गया।

मास्टर-की लगाकर एक थाल भरकर अलग अलग मिठाइयाँ ली। वह उस गरीब के घर की दहलीज पर वह थाल छोडकर वह चोर वहाँ से रवाना हो गया। राजमहल में जाकर बेडी पहनकर गहरी नींद सो गया।

इस तरफ किसी काम वश सास को दहलीज की ओर जाना हुआ। मिठाई से भरा थाल देखकर वह सास बहू को आश्चर्यानुभव करते हुए बुलाकर कहा कि "अरे बेटा ! भगवान ने हमारी बातचीत सुनकर सचमुच मिठाई का थाल भेज दिया !"

दोनों ने भरपेट मिठाई खायी फिर भी मिठाई बच गई।

सुबह नौ बजे राजा जगा,चोर को भी जगाया। राजा को कहीं चलकर जाना था। अत: चोर को अपने साथ लिया। ऐसे शातिर चोर को कैसे अकेले छोडा जा सकता है?

राह चलते वक्त एक आश्चर्यजनक घटना घटी। चोर के ऊपर आकाश में रहे एकमात्र बादल ने छाया कर दी। राजा पर सूर्य की किरणे सीधी पड रही थी। राजा से यह सहा नही गया। उसने चोर को अपनी दाहिनी ओर से हटाकर बायीं ओर कर दिया।

पर यह क्या ? वह बादल भी चोर के माथे पर छाया करते हुए उस तरफ बढ गया।

राजा ने उस चोर को पुन: अपनी दाहिनी ओर किया। बादल भी दाहिनी ओर हटकर चोर को छाया देने लगा।

अब तो हद हो गई। राजा व्याकुल हो गया। कुदरत भी चोर के अनुकूल हो ,यह बात उसके दिल को कचोटने लगी।

राजा ने मन में सोचा कि इस चोर ने विगत चौबीस घंटों में अवश्य कोई जोरदार धर्मकार्य किया होना चाहिये। इसके बिना कुदरत चोर के ऐसे अनुकूल नही हो सकती।

राजा ने शंकित होकर चोर से इस विषय में साग्रह पूछा; तब चोर ने खुलकर सारी बात बता दी।

मानवता का इतना उत्तम कार्य करने के लिये राजा चोर पर बहुत प्रसन्न हो गया। धर्म के प्रभाव का उसने साक्षात्कार किया।

चोर का बहुमान करके राजा ने उसे मुक्त कर दिया। चोर ने भी चोरी के काम को हमेशा के लिये छोड दिया। यह घटना को जानकर नगर के हजारों लोगों की धर्म के प्रति श्रद्धा खूब बढ गई।

133. धर्म में इतना धैर्य होना चाहिये।

यूरोप का महदांश हिस्सा अपने नियंत्रण में आ जाने के खयाल में मस्त हिटलर को विश्वयुद्ध में अपेक्षातीत बडी तबाही को देख युद्धविराम करने का विचार आया। उसके लिये उसने चर्चिल को आमंत्रण दिया। इटाली के मुसोलिनी –हिटलर के दोस्त को भी बुलाया गया।

किसी शांत प्रदेश के सरोवर के तट पर ये तीनों मांधाता मिले।

हिटलर के स्वभाव में अधीरता और आवेश था। चर्चिल शांत स्वभावी और खूब धैर्यवान था।

गुप्त मंत्रणा के प्रारम्भ होते ही हिटलर ने चर्चिल के साथ साफ साफ कहना शुरू कर दिया। उसने कहा :"मिस्टर चर्चिल ! आप जानते हैं कि हम लगभग सारा यूरोप अपने नियंत्रण में ले लेने की स्थिति में हैं। यदि हमें यह युद्ध तत्काल रोक देना है तो अभी से संधी कर लें। आप यूरोप के देशों पर रहे हमारे नियंत्रण को लिखित स्वीकृति दे दीजिए ."

एक ही साँस में हिटलर ने यह बात कही परंतु उसका जरा भी प्रतिसाद देने के बदले चर्चिल ने चाय के कप से रकाबी में थोडी चाय निकाली। चाय बहुत गर्म थी। चर्चिल का मौन हिटलर को व्याकुल

कर रहा था। उसने ऊँची आवाज में पूछा, जवाब क्यों नही दे रहे हैं ?क्या यूरोप के देशों पर हमारा नियंत्रण आपको मान्य नही है ? चर्चिल ने इतना ही कहा कि ,"जी ना,.हमारे लोगों को आपकी बात जरा भी स्वीकार्य नही है। हम लोग हारने की स्थिति में हैं .इस बात को हम आज भी स्वीकार करते नही हैं।"यह सुनकर हिटलर ने गरजते हुए कहा "आपको हमारी बात का स्वीकार करना ही पडेगा।"

आराम से रकाबी को मुख तक लाकर चाय पीने लगे चर्चिल ने हिटलर से कहा ,"हमारी प्रजा में इस प्रकार का जब कोई विवाद जन्म लेता है तब उसका निर्णय करने के लिये दो उपायों में से कोई एक उपाय आजमाते हैं।

"एक उपाय है सिक्का ऊछालने का और दूसरा है किसी वस्तु पर शर्त लगाने का।"

हिटलर ने कहा,"चलिये. हमें दूसरा उपाय मंजूर है। आपको जो ठीक लगे वह शर्त लगाइए। जो जीत जाय उसे समग्र यूरोप पर का हमारा आधिपत्य प्राप्त हो।"

चर्चिल ने बडे आराम से कहा," ठीक है साहब ! यह जो जलाशय है,उसमें एक मछली को देखो। वह लगातार यहाँ से वहाँ पानी पर तैर रही है।,उसे पकडना है। बिना जाली की सहायता जो उसे बाहर निकाल लाये उसका यूरोप।"

ताली बजाकर हिटलर ने आनंद में आकर शर्त का स्वीकार किया। तुरंत जेब से रिवोल्वर निकालकर उस मछली को शूट करने के लिये धडाधड गोलियाँ छोडना शुरू कर दिया।

पर काश ! मछली तो बहुत चालाकी के साथ गोली की मार से सरकती ही चली। अंततः हिटलर थक गया। उसे अपने हाथ से यूरोप को छूटता अनुभव हुआ। वह गुस्से से भर गया।

उसने मुसोलिनी से कहा," अरे ! तुम कुछ करो। इतनी छोटी सी बात में कहीं यूरोप को अपने हाथ से जाने दिया जा सकता है ?"बाद में मुसोलिनी ने भी बहुत गोलियाँ चलायी पर सारी मेहनत व्यर्थ हुई।

हिटलर ने उससे कहा कि "तुम सरोवर में कूद जाओ और मछली को पकड लो।"

मुसोलिनी पानी में कूद गया। एक घंटे तक प्रयत्न किया।

इस सारे समय के दौरान चर्चिल तो चाय की चुस्कियाँ लेता रहा। मुस्कुराता रहा। कभी टेबल पर

पेन से कोई न कोई चित्र बनाता रहा।

समग्र यूरोप ऊपर नियंत्रण देनेवाली शर्त के जंग के दौरान चर्चिल पूरी स्वस्थता धारण किये गंभीरता के साथ कुर्सी पर आराम से बैठा हुआ था।

हर तरह से निष्फल होने के कारण अकुलाये हुए हिटलर ने मुसोलिनी को बहुत गालियाँ सुनाई। बाद में उसने चर्चिल से कहा "मिस्टर चर्चिल ! अब शर्त के अनुसार आप मछली को पकडकर दिखाओ।

यदि आप सफल हुए तो आपके यूरोप पर का अधिकार हम कबूल रखेंगे।"

यह सुनकर चर्चिल खडा हुआ। चाय में शक्कर डालने के लिये जो चम्मच टेबल पर पडा था ,उसे ऊठाकर सरोवर के किनारे पर गया। उसने चम्मच को पानी में डाला। चम्मच में जितना पानी समाया उतना लेकर किनारे की मिट्ठी में ऊँडेल दिया।

दूसरी बार चम्मच पानी में डालकर चम्मच भरकर पानी को उलिच दिया।

तीसरी बार भी ऐसा ही किया। चौथी ,पांचवी ,छठी ,सातवीं बार भी वैसा ही किया।

यह सब देख अधीर हुए हिटलर ने उससे पूछा कि "तुम यह क्या कर रहे हो ?"

चर्चिल ने कहा कि -"इस प्रकार हम सारे सरोवर को एकबार खाली कर देंगे। और उस वक्त वह मछली हमारे हाथ आ जायेगी और इस प्रकार हम शर्त जीत जायेंगे।"

हिटलर ने व्याकुल होकर कहा,"अरे चम्मच से पानी ऊलीचने में तो कितना वक्त लग जायेगा?"

चर्चिल ने ठंडे कलेजे से जवाब दिया कि "साहब ! हम यूरोप के लोग इतनी ही धीरज से युद्ध लडना चाहते हैं और विजयी होना चाहते हैं। हमें इस विषय में पूरा विश्वास है।"

सौजन्य

प्रभु भक्त

'मीरा'

जरा सोचिएगा!

विज्ञान क्षेत्र (advertisement field) का एक अति सफल नियम ये रहा है ... एक ही चीज को बार-बार दोहराने से वह चीज-बात-विचार (भले झूठ हो या अर्ध सत्य) वह सुनने-देखने-पढने-जानने वालो के दिमाग पर हावी हो जाता है। धीरे-धीरे करके मन उसका संपूर्ण स्वीकार करने मजबूर हो जाता है।

उसी तरह Film industry या Sports world या Politics line के जो कोई भी celebrity बनते है ...बनाये जाते है....वे लोग अपने-अपने विचार-वाणी -वर्तन का गहरा प्रभाव आम जनता के उपर जरूर डालते है और (हम) लोग उन्ही के पीछे चलने लगते है। यह है मानवीय मनोवैज्ञानिक महासत्य !

तो उसी को लेकर अगर हम महापुरुषों के, गुणीजनों के, नेकदिल व्यक्तियों के परिचय में आना चाहेंगे तो उनके उन्नत जीवन के छोटे-बडे प्रसंगो से काफी प्रेरणादि प्राप्त कर सकते है । उसी को हमारे idol, Role model, mentor बनाकर आगे जाकर खुद भी महान बन सकते है ।

सिर्फ आधा घंटा प्रतिदिन बडे लोग खुद पढे, छोटे बच्चो को सुनाए, बच्चे खुद पढकर ही जीवन निर्माण की ओर आगे बढे ...

Firsst Look
IMPRESSION GUARANTEED....
9597511135